INTERNATIONAL MAGAZINE
RNI No. 61816/95
Postal Regd. No. CHD/0081/2024-26

Date of Publishing : 21.08.2026
Page No. from 1 to 60
Date of posting
Last Date of Every Month
Posted by MBU

30/-

एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति

विश्व गुरमत रूहानी मिशन चैरिटेबल ट्रस्ट

ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणीऐ एकु एकु बखाणीऐ।
आतम पसारा करण हारा प्रभ बिनां नहीं जाणीऐ।

आत्म मार्ग

सितम्बर 2026

If Undelivered, Please Return to
Atam Marg Office
Gurdwara Ishar Parkash, Ratwara Sahib
New Chandigarh, P.O. Mullanpur Garibdass,
Teh.Kharar, Distt. S.A.S Nagar (Mohali) - 140901,
Punjab, India,
Tel. +91-94172-14391,79

सन् 1604 ई. में, जब श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का पहली बार *प्रकाश* (स्थापना) किया गया, तो श्री गुरु अर्जन देव जी ने गहरे आदर और सम्मान के साथ इस पवित्र ग्रंथ को एक ऊँचे सिंहासन पर स्थापित किया, जो उनके अपने आसन से भी ऊँचा था। इस पवित्र अवसर पर, गुरु साहिब ने बाबा

सम्पादकीय

'अमर कथा' शीर्षक के अन्तर्गत, बाबा जी ने कुछ ऐसी अमोलक बातें बताईं हैं, जिन्हें पढ़कर जिज्ञासु अमरता की ओर बढ़ना शुरू कर देता है जैसे शिव जी ने पार्वती को अमर कथा सुनाई थी ऐसे ही बाबा जी यह अमर कथा अपने प्यारे आत्ममार्गियों को सुना रहे हैं। भगवान प्राप्ति के लिये सत्संग प्रमुख द्वार है। बहुत से प्रेमियों को 20-20, 25-25 वर्ष की अवधि सत्संग करते-करते बीत जाती है, परन्तु उसका पूरा-पूरा लाभ उन्हें नहीं मिल पाता। अत: सत्संग के महत्व को समझते हुए, जिज्ञासुओं के लिये क्ब गुण वक्ता के और क्ब गुण श्रोता के इस लेख में बताये गये हैं। जैसे बिजली का बल्ब जलाने के लिये, हम प्राय: देखते हैं कि दो तारें होती हैं, एक को धनात्मक Positive और दूसरी को ॠणात्मक (Negative) कहते हैं। जब ये दोनों तारें क्ष्यह्वद्द में डालकर बटन दबाते हैं, तो बल्ब प्रकाशित हो जाता है। ठीक इसी प्रकार क्ब गुणों वाली तार वक्ता की और क्ब गुणों वाली तार श्रोता की जब मिलकर सत्संग रूपी मेन स्विच में फिट हो जाये, गुरू कृपा का बटन दब (Switch शठ्ठ हो जाये) जाये, तब ज्ञान रूपी बल्ब जरूर-जरूर जलेगा ही, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस बात की प्रौढ़ता करने के लिये गोपी चन्द उज्जैन के राजा का प्रसंग बहुत ही रोचक एवं मार्मिक है। भगीरथ और सच्चे पातशाह गुरू नानक देव जी के प्रसंग ने तो इसमें सोने में सुहागे का काम कर दिया है।

दो बातों को सदा ह्दय में धारण कर लेना ही अमर कथा की बुनियाद है। पहली बात परमात्मा, वाहिगुरू, राम, अल्लाह जिस नाम से भी आप, अपने प्यारे को पुकारते हैं, वह हर जगह मौजूद है। वह सर्व व्यापक है। हमारे अंग संग है, सदीवी है। दूसरी बात - इसका भण्डार अक्षय है, कभी खत्म नहीं होता। इन्सान लेता-लेता थक जाता है, मृत्यु काल का ग्रास बन जाता है परन्तु वह देता देता कभी नहीं थकता। जब हम यह पक्का दृढ़ विश्वास मन में बिठा लेगें कि वह परमेश्वर सभी जगह हैं तो हमारे अन्दर निर्मल भय बना रहेगा और निर्मल भय में रहते हुए, जगत में कोई गलत कार्य नहीं करेंगे। शुभ कार्यो में प्रवृति बनी रहेगी। दूसरी बात जब उसके भण्डार कभी खाली नहीं होते, उसने तो देना ही है, जैसे माता-पिता, छोटे-छोटे लाडलों का पालन पोषण करते हैं, ठीक उसी तरह वह भी देता है। वह अच्छी तरह से जानता है कि मेरे इस पुत्र भक्त को अब कौन सी चीज़ चाहिये, वह उसी समय दे देता है। अमरता की ओर ले जाने वाली, इस अमर कथा की, अगले अंक में प्रतीक्षा करें, जिस प्रकार यह कथा पृष्ठों में प्रकाशित हो रही है, हमारी प्रार्थना है कि यह अमर कथा हमारे मनों में, ह्दयों में, दिलों में, रोम-रोम में सदा-सदा बहती रहे।

'किव सचिआरा होइऐ ?' प्रकाशित लेख में गोता लगाते-लगाते लगभग साढ़े पाँच वर्ष बीतने को जा रहे हैं। एक भोली-भाली राजकुमारी को, भाई तिलोका जी ने, शारीरिक पीड़ा सहन करते हुए भी, प्राण त्यागने की देहरी पर बैठे हुए भी, अन्तिम श्वांस तक 'सरब रोग कउ अउखदु नाम' का महत्व समझाने के लिये, पहली शर्त 'मुर्दा होइ मुरीद' तक पहुँचा दिया। राजकुमारी का लाडलापन, भोलापन, सीधापन, अठखेलियाँ आदि-आदि अब समाप्ति के द्वार पर पहुँच चुकी हैं। अब वह इतना तो समझने लगी हैं कि मैं शरीर नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ। पूर्ण गुरमुख भाई तिलोका जी के श्वांस गिने चुने रह गये, फिर भी राजकुमारी को समझाए जा रहे हैं कि, ''जिसे मैं प्यार करता हूँ, ''वह प्यारा, बहुत ही प्यारा और न्यारा है। इसलिये यदि तू वास्तव में, मेरे मरने के पश्चात, मुझे मिलना चाहती है तो तू भी मेरे सतगुरू से प्यार कर। यदि तू सच्चा प्यार करेगी तो वह भी तुझे प्यार करेंगे।'' बहुत सरल एवं सीधी भाषा में महापुरुषों ने जुलाई मास के अंक में प्रकाशित लेख में राजकुमारी को समझा दिया और भी बहुत सी बातें समझाईं।

शीर्षक 'मैं नाहीं' के अन्तर्गत, जिस प्रकार तपती गर्मी के पश्चात, वर्षा ॠतु से सारी धरती जल मग्न हो जाती है, चारों ओर हरियाली ही हरियाली छा जाती है, ऐसे ही तपते ह्दयों में सावन का महीना किस तरह से सकल शरीर में ठण्डक पैदा करता है। प्रकृति की मनमोहनी, लुभावनी वायु, शरीर में प्रवेश करते ही सच्चे जिज्ञासुओं के ह्दयों को तृप्त कर देने वाला, वार्तालाप शैली में लिखा गया लेख, पाठकों के ह्दयों पर बहुत गहरी छाप छोड़ता चला जाता है। ऐसे लगता है मानों महापुरुष एक-एक प्रेमी के साथ बैठकर उसके साथ आत्मीयता से बातें कर रहे हों और 'मैं नाही प्रभु सब किछु तेरा' के पीछे छिपे दर्शन की व्या या कर रहे हों। बातें-बातें करते-करते इतने तल्लीन हो गये, प्रीतम प्यारे का साथ, बरबस मुखारविन्द से स्वर गूँज उठा - 'आखा जीवां विसरे मर जावां' बाहर कुदरती वर्षा में गोता लगाओ और अन्दर से ह्दय में गोता लगाओ -

धारना - मन वेच दे गुरां नूँ आपणां - कारज तेरे रास होणगे - 2, 2 मेरे प्यारे कारज तेरे रास.........-2

रतवाड़ा साहिब के सालाना गुरमति समागम से सम्बन्धित पहली मीटिंग 20 सितम्बर को हो चुकी है। समागम के सारे प्रबन्ध को सुचारू रूप से चलाने के लिए सेवाओं का विभाजन कर दिया गया है। अनेकों प्रेमीजनों ने मीटिंग में भाग लेते हुए सेवाएँ प्राप्त कर ली हैं। श्रद्धा तथा प्यार के कारण प्रेमीजन विभिन्न सेवाएं करने के लिए उत्सुक व आतुर हैं ताकि समागम में आने वाली संगत को किसी भी प्रकार की असुविधा न आ सके। देश व विदेशों में सुदूरवर्ती स्थानों पर रहने वाले श्रद्धालुजनों को निवेदन है कि वे रतवाड़ा साहिब में आयोजित हो रहे इस वार्षिक गुरमति समागम में पहुँचने से सम्बन्धित अग्रिम सूचना प्रबन्धकों को देने की कृपा करें ताकि आप सबके लिए आवश्यक व योग्य प्रबन्ध किए जा सकें।

विषय–सूची

1. सम्पादकीय	2	भाई गुरिंदर सिंघ
2. अमर कथा	4	सन्त वरियाम सिंघ जी
3. श्री सन्त श्री ईश़र सिंघ जी महाराज	15	ज्ञानी मेहर सिंघ जी
4. किव सचिआरा होईऐ ?	20	सन्त वरियाम सिंघ जी
5. मैं नाही	34	सन्त वरियाम सिंघ जी

अमर कथा

सन्त वरियाम सिंघ जी
बानी एवं संचालक वि. गु. रू. मिशन

आज तक संसार में भोग भोगता हुआ कोई भी व्यक्ति तृप्त नहीं हुआ। न तो नेत्र देख-देख कर थकते हैं, न कान सुन-सुन कर थकते हैं, न जीभ स्वाद चख चख कर तृप्त होती है, न नाक वासनाएं सूंघ-सूंघ कर शान्त होती है और अधिक जीने की जो वासना है, वह भी कोई जी भर कर नहीं जी सका। दो सौ वर्ष की आयु हो गई, कहते हैं कि अभी कल ही है, पाँच सौ साल की हो गई, कहते हैं जल्दी चला गया -

रजि न कोई जीविआ कूड़े भरवासे॥

भाई गुरदास जी, वार 27/9

सो सभी जितनी भी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं -

अखी वेखि न रजीआ बहु रंग तमासे॥

भाई गुरदास जी, वार 27/9

जो पीरों तथा मुरीदों का प्यार है, वही सच्चा रास्ता है, सच्ची रहरास है। सो इस प्रकार भोग की रूचि खत्म हो गई? अच्छे भोग की रूचि, मनुष्य हर समय मांगता है, चाहता है। दुनियाँ का कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो परमेश्वर को प्यार में मांगे या उसके दर्शनों की माँग करे, कोई बिरले-बिरले ही होते हैं, सारे नहीं होते। जरूरत के लिये, अपने भोगों के लिये, दिन रात उसके पास प्रार्थनाएं होती हैं। ये कभी समाप्त नहीं हुआ करतीं। पहले थोड़ा सा पैसा मांगता है कि मेरे पास 20 हज़ार रूपये हो जायें, फिर कहता है ख लाख हो जायें, वह हो गया। अब कहता है 20 करोड़ हो जायें। आगे ही आगे बढ़ता चला गया -

त्रिसना बिरले ही की बुझी हे।
कोटि जोरे लाख क्रोरे मनु न होरे।
परै परै ही कउ लुझी हे॥ पृष्ठ - 213

सो वासनाओं में, भोगों में रूचि कभी खत्म नहीं हुआ करती-

भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार॥ पृष्ठ-1

बेशक चौदह पुरियों का बोझ क्यों न बान्ध ले तो भी जो भोगों की रूचि है, उसकी भूख कभी नहीं मिटा करती और फिर यह कितनी बुरी है? जब मनुष्य शरीर छोड़ता है, उस समय वह रूचि बहुत तंग करती है। वह वासना बन जाती है, फिर वासना से हम जन्म मरण के चक्कर में आते हैं। मकान की वासना, मकान-मकान मनुष्य करता रहता है। होगा क्या? प्रेत बन जायेगा। पैसा, पैसा, पैसा, पैसा, सारी जिन्दगी करता रहता है, मरने के बाद साँप की यौनि में पड़ जायेगा। स्त्रीयों की ओर ध्यान देता है, मरने के बाद वेश्या बन जायेगा, पुत्रों की ओर ध्यान देता है कि और चाहिए, हुआ नहीं, मर गया पुत्र को याद करता करता, सूअर बन जायेगा, बारह बारह इकट्ठे ही पैदा होते हैं फिर। यदि परमेश्वर की ओर रूचि हो तो महाराज फ़रमान करते हैं -

अंति कालि नाराइणु सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै।
बदति तिलोचनु ते नर मुकता पीतंबरु वा के रिदै बसै॥

पृष्ठ - 526

वाहिगुरू इसके हृदय में बस जाता है, फिर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। सो इस प्रकार भाई भगीरथ बन्दगी करता है। महाराज जी की उच्चारण की हुई बाणी इकट्ठी कर ली, उसकी विचार करता है, सिमरण करता है।

जो गुरबाणी है, इसकी विचार नाम की ओर प्रवृत करती है। नाम में रूचि जाग्रत ही गुरबाणी से होती है। यदि अकेला व्यक्ति नाम ही जपता रहे, थोड़ी देर के बाद जैसे ईंधन (Fuel) खत्म हो जाता है, इसी तरह उसकी रूचि ठण्डी पड़ जाती है। यदि बाणी का भी साथ-साथ विचार करता है, तो रोज़ दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति करता है क्योंकि विचार आते रहते हैं, इरादा बनता रहता है। सो जो नाम है, यह मैल दूर करता है, इससे मन के अन्दर प्रकाश आता है। जब गुरमुख की सेवा करता है, उस समय जो हउमैं मनुष्य के अन्दर होती है यह निज हउमै सेवा करने से टूटती है और फिर इससे आपा नरोआ होता है। साध संगत जी! बाणी नाम की कीमत बता कर चाव पैदा करती है क्योंकि बाणी हमें बार-बार बताती है -

धारना - इच्छा होण सभे तेरीआं पूरीआं,
सतिनामु जप के वाहिगुरू - ख
मेरे पिआरे, सतिनामु जप के वाहिगुरू - 2, 2
इच्छा होण सभे तेरीआं,............।

बाणी बताती है -

प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा॥ पृष्ठ - 263
प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउ निधि॥ पृष्ठ - 262
नवनिधी अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरहि
जो हरि हिरदै सदा वसाइ॥ पृष्ठ - 649

रूचि पैदा होती है मनुष्य के मन में। सो बाणी नाम की ओर प्रेरित करती है, बताती है -

साई नामु अमोलु कीम न कोई जाणदो।

जिना भाग मथाहि से नानक हरिरंगु माणदो॥

पृष्ठ – 649

बाणी बार-बार हमें बताती है कि नाम का धन तेरे साथ जायेगा, शेष कर्मों-धर्मों द्वारा जितना धन कमाया है, वह सारा यमदूत, परलोक के रास्ते में लूट लेते हैं। जिसके पास नाम धन है उसे यहाँ भी सभी आदर पूर्वक नज़रों से देखते हैं और जब दरगाह में जाते हैं, वहाँ भी आदर होता है –

रे रे दरगह कहै न कोऊ।

आउ बैठु आदरु सुभ देऊ॥ पृष्ठ-252

बहुत बड़ी बात है यह यदि दरगाह में जाकर आदर मान मिल जाये। वहाँ कहते हैं, ''आओ जी, बैठो जी, धन्य हैं आप, आप तो बहुत अच्छा काम करके आए हो।'' फिर सारी चिन्ताएं मिट गई तेरी, दूर हो गया सारा दुख, क्योंकि वही डर मनुष्य को मार रहा है। कहाँ भेज दें वाहिगुरू जी, कोई पता नहीं है? साध संगत जी! जिसके पल्ले में नाम है –

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ।
राम नामु संतन घरि पाइआ।
तजि अभिमानु लेहु मन मोलि।
राम नामु हिरदे महि तोलि।
लादि खेप संतह संगि चालु।
अवर तिआगि बिखिआ जंजाल॥
धंनि धंनि कहै सभु कोइ।
मुख ऊजल हरि दरगह सोइ॥ पृष्ठ – 283

दरगाह में मुख उजला हो जाता है। पर महाराज कहते हैं, इतनी बातें सुनने के बाद भी, संसार को होश नहीं आती, बेसुरत ही पड़ा रहता है क्योंकि ego (हउमैं) की सुरत में रह रहा है cosmic (ब्रह्मण्डीय) सुरत में नहीं आया और महाराज इसे बार-बार ताकीद करके इस तरह फ़रमान करते हैं–

धारना – मन भोलिआ हउमै सुरति विसार – 2, 2
हउमै सुरति विसार – 2, 2
मन भोलिआ,..................–2

कौन सी बातों के चक्कर में पड़ गया तू, जीवन की सुरत है, तुझे? यह मेरा पुत्र है, ये मेरी पुत्रियाँ हैं, यह मेरे भाई हैं यह मेरी जायदाद है, यह मेरा मित्र है, ये मेरे दुश्मन हैं, यह हमारे गाँव का है, यह हमारे भाईचारे में से है, यह फलाना है, यह अमुक है, हउमै की सुरत में रहता है, कभी नहीं कहता कि यह मेरा वाहिगुरू है, कोई भी नहीं कहता। महाराज कहते हैं, हैरानी की बात है –

संगि सहाई सु आवै न चीति।
जो बैराई ता सिउ प्रीति। पृष्ठ – 264

जिन्होंने नुक्सान करना है, दुख देना है, उनके साथ तो प्रीत लगाई हुई है – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वैष, चुगली, आसा, अन्देशा आदि अवगुणों से और जिस वाहिगुरू ने सदा ही साथ रहकर, इसे सदा ही सुख देना है, उसे चित से भुलाए बैठा है क्योंकि सुरत हउमैं की है? सो महाराज कहते हैं –

इहु वापारु विरला वापारै॥ पृष्ठ – 283

यह नाम का धन कोई विरला ही पुरुष है जो इकट्ठा करता है –

नानक ता कै सद बलिहारै॥ पृष्ठ – 283

कहते हैं, सौ बार हम बलिहार जाते हैं उस पर, जो नाम धन इकट्ठा करते हैं। सो बाणी में से यह प्रेरणा मिलती है, साध संगत जी!

भाई भगीरथ गुरू नानक जी की संगत में रहकर सेवा करता है और चन्द दिनों के अन्दर ही इसकी सुरत ऊँची उठती चली गई। जो सफर तय करने में काफी आयु बीत जाती है, कितने-कितने जन्म लेता है, यह सफर इसने कुछ ही देर में तय कर लिया। गुरू महाराज जी की उस पर नदर हो गई –

नानक नदरी नदरि निहाल॥ पृष्ठ – 8

उच्च पद पर पहुँचा दिया।

आज गुरू नानक पातशाह बैठे हैं और यह भी साथ ही आ गया। महाराज मोदीखाने में काम करते हैं, यह भी साथ ही रहता है, पास ही गाँव है पर यह फिर वापिस गाँव गया ही नहीं। एक सैकिण्ड के लिये भी महाराज से बिछौड़ा नहीं चाहता सो बार-बार हर समय टकटकी लगाकर महाराज जी के दर्शन करता रहता है और थोड़ी देर के लिये भी महाराज जी आखों से ओझल हो जाएं, दिल में धड़कन मच जाती है, एक सैकिण्ड के लिये भी नेत्रों से दूर नहीं होने देना चाहता। ऐसी प्रीत महाराज जी के साथ इसकी पड़ गई।

गुरू महाराज जी के पास आज एक गरीब आदमी, अच्छा खाते पीते परिवार से सम्बंध रखता था, हालातों ने गरीब बना दिया, जिसे सफेदपोश कहते हैं, (कई भाई मरदाना आया है ऐसा लिखते हैं) महाराज जी के पास आकर प्रार्थना करने लगा कि, ''पातशाह! आप सभी को रूहानी उपदेश देते हैं और आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नति करवाते हैं और साथ ही साथ आप व्यवहार का भी ज्ञान देते हो और आपके पास ग्राहक भी आते हैं। जब आपके पास आते हैं और जब धड़ी तोलते-तोलते तेरह की गिनती पर पहुँचते हो, उस समय पता नहीं कितनी धड़ियाँ भरकर तेरह की डाले जाते हो, तेरा, तेरा, तेरा, तेरा से समाधि लग जाती है। व्यवहार भी पूरा करते हो, आप दीन और दुनियाँ दोनों के रखवाले हो। पातशाह! मैं गरीब तकलीफ में हूँ। सफेदपोश हूँ,

किसी के आगे आज तक हाथ नहीं फैलाया, लड़की विवाह योग्य हो गई, घर में बिठाई नहीं जा सकती क्योंकि आजकल जमाना जो है, यहाँ अपना राज नहीं है, गुलामी का जमाना चल रहा है और बाहर के पठानों का राज है, जवान लड़की को रहने नहीं देते, इसलिये छोटी उम्र में ही विवाह कर दूँ और अपने घर चली जाये। पातशाह! मैं दिन रात इसी चिन्ता में रहता हूँ। मुझे कोई रास्ता बताओ, कृपा करो।'' महाराज जी ने दर्द भरी अपील सुनी और आपने फ़रमान किया कि, ''प्रेमी! तू चिन्ता मतकर, तू यह बता, तुझे क्या चाहिए? लिख दे।'' उस समय सारी रसद जो थी, जो कपड़ा लता, जो वस्तु चाहिए थी, वह सारी कागज़ पर लिख दी। महाराज जी ने अपने दस्त-ए-मुबारक के साथ स्वंय लिखी और कहा कि तू चिन्ता मत कर, दो चार दिनों के अन्दर सारा प्रबन्ध हो जायेगा। उस समय आप जी ने माया दी, भाई भगीरथ को बुलाया और कहा, ''गुरसिख! ऐसे कर, लाहौर जा और वहाँ से ये चीज़ें खरीद कर ला और यह पैसे ले जा, यह सारा काम जल्दी-जल्दी करना है; लाहौर केवल एक रात रहना है, दूसरी रात नहीं रहना।'' बात समझा दी, पैसे दे दिये। भाई भगीरथ लाहौर पहुँच गया।

वहाँ से जब गया, जाकर अच्छा व्यापारी देखकर, जिसका नाम भाई मनसुख था, उसको जाकर सारे सामान की सूची दिखाई और कहा, ''शाह जी! एक विवाह है और यह सामान की सूची है, इसके अनुसार हमें विवाह के लिये सौज (श्रृंगार आदि) जल्दी से जल्दी चाहिए। जो कुछ आपके पास है, वह दे दीजिए, जो कुछ तुम्हारे पास नहीं है, वह हमें किसी और जगह से मंगा कर दिलवा दें।'' भाई मनसुख ने सूची पढ़ी और कहने लगा, ''भाई आपका नाम क्या है? इसने कहा, ''मुझे भगीरथ कहते हैं।''

उसने कहा, ''भाई भगीरथ! यह जो लिस्ट है, बाकी सारा सामान तो है और वह मैं अभी तैयार कर देता हूँ परन्तु चूड़ा नहीं बनेगा, इसे बनवाने के लिये, जिस तरह का चूड़ा लिखा हुआ है, वैसा बनवाने के लिये दो दिन लगेंगे।''

भाई भगीरथ ने कहा, ''देख भाई मनसुख जी! पर मैं एक रात से अधिक नहीं ठहर सकता क्योंकि मुझे आज्ञा नहीं मिली है।'' कहने लगा, ''आप दौलत खान लोधी की नौकरी करते हो। उन्होंने हुक्म दिया है कि एक रात से अधिक न रहना। मैं आपको सलाह देता हूँ कि आप दो रातें यहाँ बिताओ यहाँ पर मुलतानी घोड़ियों वाला यक्का बहुत तेज चलता है। वह थोड़े से समय में ही सुलतानपुर पहुँचा देगा, फिर उसमें जहाँ तुम दो रातें बिताओगे, एक रात इधर मुजरे (आतिथ्य) में डाल दो, तुम्हारा काम बन जायेगा, साथ ही तुम्हारा सामान भी ठीक ठाक रहेगा, कहाँ उठाये फिरोगे? वहाँ से फिर आप तांगे में बैठकर, यक्के में बैठकर चले जाना।''

भाई भगीरथ कहने लगे, ''ठीक है, ये सारी बातें, मैं जानता हूँ, पर हुक्म डाहढे (सर्वशक्तिमान) का है। वह कहने लगा, ''आप कोई नौकरी करते हो, पठान का हुक्म है या किसी और हाकिम का हुक्म है?''

भाई भगीरथ ने कहा कि, ''हाकिम का हुक्म होता तो मुझे कोई कठिनाई नहीं थी? पर वह हुक्म डाहढे का है जिसकी अदूली (हुक्म न मानना) करके, मेरी दीन और दुनियाँ दोनों ही बिगड़ते हैं।''

यह सुनते ही एकदम चौंक पड़ा। कहने लगा, ''हैं। ऐसा भी कोई हाकिम आज के संसार में है, जिस की हुक्म उल्लंघना करके दीन भी बिगड़ता हो और दुनियाँ भी बिगड़ती हो। दुनियाँ तो हमने सुनी है लेकिन दीन की बात तो हाकिमों के पास होती ही नहीं।'' कहने लगा, ''भाई भगीरथ! इतनी कठिन बात है?''

उसने कहा यह बहुत ही मुश्किल बात है क्योंकि जो सेवा मैंने सिर पर उठाई हुई हैं, वह तन्खाह लेने वाली नहीं है, वह तो आपा (निजित्व) देने वाली है, देते ही चले जाना है, अपने पास कुछ नहीं रखना क्योंकि मुश्किल सेवा है, बहुत कठिन बात है। इस तरह से फ़रमान है -

धारना - गुर की सेवा औखी है - ख

सिरु दीजै आप गवाइ - ख, ख

सतगुर की सेवा गाखड़ी सिरु दीजै आपु गवाइ।
सबदि मिलहि ता हरि मिलै सेवा पवै सभ थाइ।

पृष्ठ - 27

कहने लगे, ''भाई मनसुख! मैं गुरू की सेवा में हाज़िर हूँ और मेरे गुरू का हुक्म है कि एक रात से अधिक नहीं ठहरना और जो महापुरुषों की सेवा है, वह बहुत कठिन होती है। इसके अन्दर यदि आपा 'मैं' भाव बचा कर रख लें तो यह सेवा नहीं होती और 'मैं' भी रहूँ, 'मेरा' अस्तित्व भी रहे और सेवा भी हो। कहते हैं अपने आप को समाप्त करना पड़ता है-

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै।
गुर की आगिआ मन महि सहै।
आपस कउ करि कछु न जनावै।
हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै।
मनु बेचै सतिगुर के पासि।
तिसु सेवक के कारज रासि।
सेवा करत होइ निहकामी।
तिस कउ होत परापति सुआमी॥ पृष्ठ - 287

परमात्मा तो उसे मिलता है जो अपने आप को मिटा दे। यदि 'मैं' वैसे ही बनी रहे और सेवा भी करता है और अपने आप की भी गिनती करता है कि मेरी भी महिमा हो, मुझे भी लोग अच्छा कहें, मेरा भी कहना मानें; फिर तो भाई सेवादार नहीं है, फिर तो शरीक हो जाता है। उसकी सेवा का सही मूल्य नहीं मिला करता, गुरू की गोद में समाना पड़ता है। एक स्थान पर ये दोनों चीज़ें इकट्ठी नहीं रह सकतीं –

हउमै नावै नालि विरोधु है दुइ न वसहि इक ठाइ॥

पृष्ठ – 560

सेवादार में यदि 'मैं' है तो उसकी सेवा को महत्व नहीं दिया जाता। सेवा उसी की मानी जाती है जो 'मैं' गवाँ दे और जब तक हउमै है, महाराज जी फ़रमान करते हैं –

पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि॥

पृष्ठ – 1102

यदि 'मैं' को रखकर सेवा करता है, कहते हैं वह सेवक नहीं हुआ करता। सेवादार नहीं हुआ करता।

एक महात्मा था, आपके पास एक डाकू आ गया, पुलिस पीछे लगी हुई थी और जब पास आ गई तो मन में कहने लगा कि, "सन्त जी मुझे बचा लेंगे।" सन्तों के पास जाते ही उनके चरणों में गिर पड़ा। कहने लगा, "महाराज! मैं डाकू हूँ, मैं आपसे कुछ भी छिपा कर नहीं रखना चाहता और मेरे पीछे वह देखो, पुलिस आ रही है, यदि आज बचा लें, तो मैं सारी ज़िन्दगी आपका एहसान नहीं भूलूंगा।" सन्त कहने लगे, "प्यारे! अब तो बातें करने के लिये समय नहीं है, जा! वहाँ से माला उठा ले और बैठकर वाहिगुरू-वाहिगुरू करने लग जा।" उसी समय पुलिस आ गई। यह बैठा माला फेर रहा है।

पुलिस के सिपाही बोले, "सन्त जी! यहाँ चोर आया है?" सन्त जी ने कहा, "भाई! हमारे लिये तो चोर भी सन्त और सन्त भी सन्त।"

चोर साध सभ ब्रहम पछानो॥ पैंतीस अखरी

हमें तो कोई भी बुरा नहीं दिखाई देता, मैं ही सबसे बुरा हूँ, मेरे से तो आप सभी अच्छे हो, चोर भी अच्छे हैं –

हम नही चंगे बुरा नही कोइ॥ पृष्ठ – ७२८

मैं अच्छा नहीं हूँ और मुझे कोई बुरा दिखाई नहीं देता। मुझे तो कोई भी चोर दिखाई नहीं देता –

मन मेरे जिनि अपुना भरमु गवाता।
तिस कै भाणै कोइ न भूला जिनि सगलो ब्रहमु पछाता॥

पृष्ठ – 610

वाहिगुरू जी ही है सभी रूपों में। यह बात कहने की नहीं हुआ करती, साध संगत जी! महात्मा सभी में ब्रह्म पहचान कर चलते हैं।

यू. पी. में जहाँ मेरा फार्म था, साथ ही एक नगर कैमरी नाम का था, थाना था वहाँ पर। वहाँ एक साधु रहा करते थे अणगउले (अपरिचित) से, उन्हें कोई नहीं जानता था। मैंने भी कई बार सुना था। एक बार मन में आया कि दर्शन करके आएं, सन्तों के दर्शन का बहुत महातम होता है –

कबीर एक घड़ी आधी घरी आधी हूँ ते आध।
भगतन सेती गोसटे जो कीने सो लाभ॥ पृष्ठ-1377

सन्तों के पास जाने से कभी भी नुक्सान नहीं हुआ करता लाभ ही हुआ करता है। मैं चला गया, जाकर नमस्कार की, मैंने कहा, "हे महापुरुष! मुझे पता चला है कि तुम्हारे पास डाकू आ गये थे और तुम्हें बहुत मारा-पीटा।" सन्त कहने लगे, "नहीं, नहीं वह तो भगवन आये थे। उनका रूप ही ऐसा था और भगवन मुझे कहते थे कि बता, तेरे पास क्या है?" मैंने कहा, "आप तो अर्न्तयामी हो, देख लो जो कुछ देखना है। आपने हमारी डयूटी लगाई है कि गजा करके (पका पकाया भोजन इकट्ठा करना) लाओ और यहीं पर ही खा-पी लो, साधुओं को खिला दो। सो भगवन! आपने माया तो हमें दी ही नहीं।" वे कहने लगे, "भगवन! फिर मुझे पीटने लग गये। कहने लगे, "बता, भगवन, भगवन छोड़, पैसे देने के नहीं और भगवन मुझे मारते रहे।" मैंने कहा, "भगवन! यह शरीर तुम्हारा है, जितना मारना है, मार लो।" फिर भगवन ने कई स्थानों पर जम्म कर दिये, कई जगह से हड्डियाँ मरोड़ दी और चले गये।" गाय खड़ी थी। मैंने कहा, "यह गाय है, आपकी संगतों को दूध पिलाने के लिए है, यह ले जाइये यदि संगतों को दूध नहीं पिलाना।" फिर भगवन चले गये।

मैंने कहा, "सन्त जी! आपने फिर पुलिस में रिपोर्ट नहीं करवाई?" कहते, "ना, भगवन की रिपोर्ट कहाँ दी जाती है?" मैंने कहा कि आपकी बड़ी निष्ठा है, डाकुओं को भी भगवन समझ रहे हो।" उन्होंने कहा कि, "यहाँ सभी भगवन ही तो हैं।"

उस समय मैं उनके कमरे में घुसने लगा। सन्त कहने लगे, "आगे एक भगवन है, देख लेना।" मैंने देखा, बहुत बड़ा साँप पड़ा हुआ है। मैंने कहा, "यह यहीं पर ही रहता है सन्त जी?" कहते हैं, "हाँ, यहीं रहते हैं हम दोनों।" ये भी यहीं रहते हैं, मैं भी यहीं रहता हूँ।" मैंने कहा, "रात को बाहर भी निकलते हो?" कहते हैं, "हाँ! मैंने कहा, "सोते कहाँ हो?" कहते हैं, "मैं धरती की सफ पर, यह भगवन भी आ जाते हैं, कई बार मेरे ऊपर ही सो जाते हैं, कई बार साथ पड़े रहते हैं।" फिर मैंने

कहा, ''आप जगाते हो ?'' कहते हैं, ''मैं आवाज़ लगाता हूँ कि भगवन अमृत बेला हो गया है। अब हमने स्नान करना है, अब जाओ। आप आराम करो।'' फिर कहने लगे, रोज़ चले जाते हैं। सन्त जी ने बताया कि ऐसे बहुत से हैं। ऐसे 50-60 साँप यहाँ रहते हैं, भगवन दर्शन देते रहते हैं। सो साध संगत जी! उन सन्तों की दृष्टि ऐसी थी -

मनि साचा मुखि साचा सोइ।
अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ।
नानक इह लछण ब्रहमगिआनी होइ॥ पृष्ठ -272

ब्रह्म दृष्टि थी उनकी।

सो उस चीज़ में लाभ ही हुआ करता है क्योंकि जब हउमैं टूट जाती है, उस समय एक ही दिखाई देना शुरू हो जाता है। जो सेवादार हउमैं धारण करके सेवा करता है उसकी सेवा को मान्यता नहीं दी जाती। सेवा उसी की मानी जाती है जो हउमै को खत्म कर दे तथा मन और तन गुरू को सौंप दे -

धारना - हउमैं विचों मार,
तन सउंप दे गुरां नूँ - 2, 2
सउंप दे गुरां नूं तन सउंप दे गुरां नूं - 2,2
हउमै विचों मार,............- 2

'मैं' को खत्म करके, मन भी तथा धन भी सौंप कर क्या होता है ? दो बाजे बजते हों, यदि एक की सुर गलत बज रही है, दूसरे बाजे की सुर भी गलत बज रही हो, अपने आप मर्ज़ी से बाजा बज रहा है, वह सुर नहीं हुआ करती, फीकी पड़ जाती है। इसी तरह से जो गुरू के पास, सन्तों के पास सेवक होते हैं, यदि वह मन-मति करे तो वह सुर नहीं होता उसकी उन्नति रुक जाती है। उन्नति रूकने के साथ-साथ बहुत बड़े दोष का भागी बन जाया करता है। सो ऐसा फ़रमान है -

सो सेवकु हरि आखीऐ जो हरि राखै उरि धारि॥

पृष्ठ - 28

जो हर समय प्रभु को हृदय में धारण करके रखता है, वह सेवक है -

मनु तनु सउपे आगै धरे हउमै विचहु मारि।
धनु गुरमुखि सो परवाणु है जि कदे न आवै हारि॥

पृष्ठ - 28

सो भाई भगीरथ कहने लगा, ''मनसुख जी! यदि कोई राजा होता, नवाब होता, दौलत खां लोधी होता, तो मुझे कोई चिन्ता नहीं थी। मैं एक रात की बजाए, दो रातें भी ठहर जाता।''

साध संगत जी! श्रद्धा धारण कर लो, यदि प्रतीति बना लोगे, सभी कुछ हो जायेगा, बन्धन कट जाएंगे -

कलीकाल तारन करतारा।
निज सरूप कीनो अवतारा॥

श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पृष्ठ - 356

उसने तो निज स्वरूप किया हुआ है, इस तरह से फ़रमान करते हैं -

धारना - परमेशर पूरा है,
सतिगुर मेरा, सतिगुर मेरा - 2, 2
परमेशर पूरा है,........... -2

कहने लगे, ''भाई मनसुख जी! आप निश्चय बनाईये, प्रतीति मन में धारण करो। जो गुरू नानक पातशाह हैं, वह मेरे गुरू हैं, उन्हें मत कहो कि कलि काल में कोई नहीं है। यह जो तुहारे अनुभव हैं कि कलि काल में कोई पूरा नहीं है, ठीक है, आपने देखा है क्योंकि तुम्हारा कच्चे लोगों के साथ पाला पड़ा है, पर मेरा पक्कों के साथ पाला पड़ा है -

गुर की महिमा किआ कहा गुरु बिबेक सतसरु।
ओहु आदि जुगादी जुगह जुगु पूरा परमेसरु॥

पृष्ठ - 397

वह तो पूरा परमेश्वर है। सो यह -

सफल मूरति गुरदेउ सुआमी सरब कला भरपूरे।
नानक गुरु पारब्रहमु परमेसरु सदा सदा हजूरे॥

पृष्ठ - 802

गुरु समरथु गुरु निरंकारु गुरु ऊचा अगम अपारु।
गुर की महिमा अगम है किआ कथे कथनहारु॥

पृष्ठ - 52

सो ऐसा जो सतगुरू है उसके तो दर्शन करते ही मनुष्य के मन में धर्म पैदा हो जाता है -

सतिगुरु धरती धरम है
तिसु विचि जेहा को बीजे तेहा फलु पाए। पृष्ठ-302

सो प्रतीति (विश्वास) की बात हुआ करती है, मुझे तो पूरा विश्वास है। सारी बात बताई कि किस तरह से मैं परमात्मा की पूजा किया करता था और मेरे नेत्र बन्द थे मुझे भविष्य वाणी सुनाई दी, ''भगीरथ! यदि तूने मुक्ति प्राप्त करनी है तो सुलतानपुर में गुरू नानक गुप्त रूप में रहकर मोदी का काम कर रहे हैं, उनकी शरण में चला जा, वह मुक्ति दे सकते हैं; मैं तो पदार्थ दे सकती हूँ, मुक्ति की वस्तु जो है, वह मेरे पास नहीं है। परमेश्वर के दर्शन तो मुझे भी नहीं हुए, मैं तुझे नहीं करवा सकती। सो उसी समय से मेरे मन में प्रतीति बैठ गई।

साध संगत जी! सारी बात प्रतीति की हुआ करती है -

धारना - होवे परतीत जी,
सतिगुरू दी पूरी मन विच - 2, 2

सतगुर की प्रतीति जब तक हमारे मन में नहीं बैठती, संशय

में रहता है कि क्या भवजल में से पार निकाल देंगे? यह नाम 'वाहिगुरू' मन्त्र हमें पार कर देगा या नहीं? गुरू नानक हमारी सुन लेगें या नहीं? अन्यथा हम माता रानी को मानना शुरू कर दें, वह सुनेगी या जाकर हम गुग्गे की या मसान की, या अमुक पीर है, वह जल्दी सुन लेता है, अमुक देवता है, वह सुन लेता है, उसके पास जाएं। यह प्रतीति हुआ करती है कि मेरा सतगुरू आपके साथ रहता है, हर जगह हाज़िर नाज़िर रहता है –

जेहा सतगुरु करि जाणिआ तेहो जेहा सुखु होइ॥

पृष्ठ – 30

यदि प्रतीति कम है, तो काम सिद्ध नहीं हुआ करता। पूरा विश्वास हो, सौ प्रतिशत फिर वहाँ बात बन जाया करती है जैसा उसे समझो, वैसा ही सुख होता है।

गुरू अंगद साहिब महाराज, भाई बाला जी बैठे हैं, बाबा बूड्ढा जी भी बैठे हैं। गुरू महाराज जी ने भाई बाला जी से पूछा, ''भाई बाला जी! आपने नौ खण्डों, सात द्वीपों, जहाँ तक धरती की आबादी है, सभी जगह जाकर गुरू नानक पातशाह के कौतुक देखे, आप गुरू नानक पातशाह को क्या समझते रहे?'' क्योंकि साध संगत जी! आजकल नक्शे बनाए जाते हैं कि गुरू नानक साहिब वहाँ तक गये। गुरू नानक साहिब तो भाई गुरदास जी कहते हैं कि जहाँ तक सृष्टि थी, वहाँ तक गये थे। फिर कहते हैं कि वह अग्रेजी, अफ्रीकी आदि बोली कैसे बोलते थे?

साध संगत जी! सभी के अन्दर जो बाणी है, यह चार प्रकार की हुआ करती है। पहला भाग जो हुआ करता है, उसे परा बाणी कहते हैं। उसे आप भी नहीं समझते, ऐसे ही उठ खड़ी होती है, हमारे अन्दर। दूसरी हुआ करती है हृदय की बाणी, जिसे पसन्ती कहते हैं। यदि इसे अग्रेजी में कहें तो टैलीपैथी कहते हैं, उसके अन्दर भाव होते हैं, अक्षर कोई भी नहीं हुआ करता। तीसरी होती है, 'कंठ की बाणी' जिसे मधमा कहते हैं। चौथी जैसे मैं बोल रहा हूँ, यह वैखरी है। यह वैखरी बाणी तो हुआ करती है, अपने-अपने देश की, जो मधमा बाणी हुआ करती है, वह दोनों की मिली जुली होती है, कुछ अपने देश की, कुछ अक्षर बन रहे हैं। जो हृदय की बाणी है, 'पसन्ती' जिसे कहते हैं, वह भावों की बाणी हुआ करती है, उसमें अक्षर नहीं हुआ करते, टैलीपैथी होती है? जो टैलीपैथी समझता है वह तो जानवरों की बाणी, वृक्षों की भाषा, परिन्दों की भाषा, कीड़ों की भाषा, ऐसी बाणियाँ सभी समझ लेता है।

कई महात्माओं की साखियाँ आती हैं कि जानवर उनके साथ बातें करते थे। जानवर सारे ही बोलते हैं, पर एक दूसरे के साथ टैलीपैथी से बातें करते हैं। कुछ इनके चिन्ह भी होते हैं।

सो गुरू नानक पातशाह सभी के भावों की बाणी समझते थे सभी को अन्दर से समझा दिया करते थे। दूसरी बात, वह सभी कुछ जानते थे, कोई बात ऐसी नहीं थी कि अमुक बाणी नहीं जानते थे, अग्रेजी नहीं पढ़े थे, ऐसी कोई बात नहीं है। जहाँ तक धरती थी, वहाँ तक गुरू नानक पातशाह गये, सभी का उद्धार किया, मिश्र गये, सूडान गये, अफ्रीका गये, साखियाँ बताती हैं कि ऐसे-ऐसे लोग थे जो आदमियों को ही खा जाया करते थे, उनका भी आपने उद्धार किया।

सो गुरू अंगद पातशाह ने पूछा कि ''भाई बाला जी! आप गुरू नानक पातशाह को क्या समझते रहे?'' भाई बाला जी ने कहा, ''पातशाह! वे तो पूर्ण सन्त थे।'' महाराज जी भी चुप कर गये कि भाई बाला जी साथ रहते हुए भी गुरू नानक पातशाह को समझ न सके। आशीष दी, ''अच्छा भाई! तू भी सन्त हुआ।'' बाबा जी से पूछा, ''बाबा जी! आप तो गुरू नानक पातशाह के साथ त्त वर्ष की आयु से ही लगे हुए हैं और आपने गुरू नानक पातशाह के बड़े खुलकर दर्शन किये हैं और बहुत कुछ उनके बारे में जानते हो, आप क्या समझते रहे?''

बाबा जी ने कहा, ''महाराज! वह तो पूर्ण ब्रह्मज्ञानी थे।'' कहते हैं, ''अच्छा! तुम ब्रह्मज्ञानी हुए।'' इस तरह से आपने बारी-बारी सभी से पूछा, भाई भगीरथ को, भाई मनसुख को। सभी ने अपने-अपने मत तथा निश्चय के अनुसार जवाब दिये जब सभी गुरू नानक पातशाह के बारे में बता चुके, उस समय सभी ने प्रार्थना की, ''पातशाह! आप गुरू नानक पातशाह को क्या समझते हैं?'' उस समय आपके नेत्रों के पलकों में से एक एक कणी आसुओं की बह चली, काफी देर आप मौन बैठे रहे।'' उसके बाद बोले, ''साध संगत जी! गुरू नानक पातशाह के बारे में पूछते हो, वह तो करोड़ों ब्रह्मण्डों के स्वामी स्वंय निरंकार, गुरू नानक रूप होकर, गुरू ज्योति में प्रकट हुए थे।'' सभी ने नमस्कार की और कहा, ''पातशाह! तो आप भी गुरू नानक पातशाह का रूप हो गये।''

सो साध संगत जी! निश्चय का फर्क है। चार प्रकार के निश्चय हुआ करते हैं। पहला निश्चय होता है कि मेरा जो गुरू है – वह अच्छा सन्त है; दूसरा निश्चय होता है कि मेरा गुरू सारे सन्तों से अच्छा सन्त है, तीसरा निश्चय होता है कि मेरा गुरू तो प्रभु जैसा ही है, चौथा निश्चय हुआ करता है कि मेरा गुरू साक्षात आप ही परमेश्वर है। सो जैसा कोई मानता है, जानता है वैसा ही फल पाता है –

जेहा सतगुरु करि जाणिआ तेहो जेहा सुखु होइ॥
एहु सहसा मूले नाही भाउ लाए जनु कोइ॥

पृष्ठ – 30

गुरू महाराज कहते हैं कि परमेश्वर के साथ 'भाओ' लगाकर

देख लो, प्यार करके देख लो, संशय तो हृदय में है ही नहीं –

नानक एक जोति दुइ मूरती सबदि मिलावा होइ॥

पृष्ठ –30

जो तो शबद के साथ जुड़े होते हैं, एक ही हुआ करते हैं, दो नहीं हुआ करते –

सो कहने लगे, ''मनसुख जी! आप इस बात पर संशय मत करो।''

'कलीकाल तारन करतारा।

निज सरूप कीनो अवतारा।'

श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पृष्ठ – 356

वह तो करतार ने अपना निज स्वरूप बनाया है –

जिह के जागहि भाग महाना।

सो महिमा जानहि मतिवाना।

श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पृष्ठ – 356

उस मत वाला बनता है, इस चीज़ की महिमा को जानने के बाद, आप अब आजकल अपने आप को गुप्त रूप में रखे हुए हैं, मोदी बने हुए हैं। कई बार मौज में आकर आप तुलाई का काम करने लग जाते हैं। जब बारह के बाद तेरह आता है तो वप् नहीं बोलते तेरा कहते हैं, तेरा, तेरा तेरा......... समाधि लग जाती है। समाधि खुलती नहीं, तराजू रूक जाती है, ग्राहक प्रतीक्षा करते रहते हैं कि तेरा ने क्या कर दिया। कहते हैं फिर वह बाँट उठाते हैं, सेर का, दो सेर का, डाले जाते हैं, पाँच सेर का डाल देते हैं, दस सेर का डाल देते हैं और जब 'पाओ' को हाथ लगाते हैं तो पा, पा (डाल–डाल) धन्य, धन्य तू। फिर पा ही पा कहे जाते हैं; वज़द में आ जाते हैं –

लोकिक रीति करहिं निरबाहू।

रिदे गयान घन अगम अथाहू॥

श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पृष्ठ – 356

चौदह लोकों के ज्ञाता हैं। भाई मनसुख कहने लगा, ''भाई बिल्कुल ठीक है, तेरा अनुभव तेरे लिये ठीक है पर मैंने तो जगह–जगह घूम फिर कर, जैसे मछली पत्थर चाट कर वापिस मुड़ जाती है मेरा विश्वास इसी तरह से हिला हुआ है, मेरी जब तक पूरी निशा (संशय निवृत्ति) नहीं होती, तब तक मैं इतना विश्वास तो नहीं कर सकता, जितना तुम करते हो। सो कहने लगा, ठीक है, आप निशा करवा दीजिये।''

मुझे तो जब से उन्होंने नाम दिया है, मैं हल्का फुलका हो गया, अन्तसकरण की सारी मैल उतर गई है तथा अपने स्वरूप का दर्शन होता है। इस तरह फ़रमान है –

धारना – अंम्रित नाम रिदे महि दीनो,

जनम जनम की मैल गई – 2, 2

जनम जनम की मैल गई – 2, 2

अंम्रित नाम रिदे महि दीनो,..........–2

गुरि पूरै मेरी राखि लई।

अंम्रित नामु रिदे महि दीनो जनम जनम की मैलु गई।

निवरे दूत दुसट बैराई गुर पूरे का जपिआ जापु।

कहा करै कोई बेचारा प्रभ मेरे का बड परतापु॥

पृष्ठ –823

कहने लगे, ''मनसुख जी! देखो मनुष्य अपनी–अपनी अक्ल के अनुसार काम करता है, मैं तो जो मेरे साथ आपबीती है, वह मैंने आपसे प्रार्थना की है कि भरोसा ही सब कुछ होता है, श्रद्धा ही सारी चीज़ होती है। यदि गुरू से कुछ लेना है, महापुरुषों से कुछ लेना हो तो श्रद्धा से मिल जाता है। यदि श्रद्धा न हो, फिर कुछ नहीं मिलता।''

एक बार एक राजा अपने वज़ीर से कहने लगे, ''वज़ीर साहिब! एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही।'' वज़ीर कहने लगे, ''बताईये? राजा ने कहा, ''पीर बड़ा कि यकीन बड़ा? इन दोनों में से कौन बड़ा है?'' वज़ीर कहता, ''जी, दोनों बड़ी हैं, पीर भी बड़ा और भरोसा भी बड़ा।'' राजा कहने लगा, ''मैंने यह बात नहीं सुननी, दोनों में से एक बताओ, कौन सी चीज़ बड़ी है?'' वज़ीर ने कहा, ''महाराज! दोनों बड़े हैं।'' आखिर में जब पाँच सात बार ऐसा हुआ तो राजा ने कहा, ''तू मुझे दोनों में से एक क्यों नहीं बताता?'' वज़ीर ने कहा कि, ''महाराज! फिर बता देता हूँ? वह यह है कि भरोसा बड़ा है? यदि पीर में कमज़ोरी भी हो, भरोसा पूरा हो, तो भी तर जाता है। धन्ने का जो मुरशद था, जिसने पत्थर दिया था, उसका निश्चय कमज़ोर था, लेकिन जो धन्ने का भरोसा था –

मिले प्रतखि गुसाईआ धंना वडभागा॥ पृष्ठ – 488

प्रत्यक्ष होकर, परमात्मा मिल गया। भोजन खा लिया, परमेश्वर ने, और बाद में जो त्रिलोचन पण्डित था, जब उसे पता चला कि धन्ने को प्राप्ति हो गई तो वह धन्ने के पास गया और जाकर कहने लगा, ''धन्ना! ठाकुर को भोजन खिलाया करता है?'' धन्ने ने कहा, ''हाँ, पण्डित जी।'' वह अभिमान में नहीं आया, वैसा ही रहा। सो पण्डित ने कहा, ''भोजन खिलाया करता है?'' धन्ने ने कहा, ''हाँ जी।''

''सच है कि अपने आप ही ऐसे ही कह देता है?''

''नहीं महाराज! वह तो रोज़ ही खाते हैं।''

''वह रहते कहाँ हैं?''

''मेरे पास से जाते ही नहीं, यहीं रहतें हैं।''

''अब भी है?''

''हाँ।''

"कहाँ है ?"

"देखो, वह जो लाल गाय है, गोरी गाय, उसके पास खड़े हैं।"

"कौन सी ?"

"वह देखो, वृक्ष के उस ओर।"

"गाय तो खड़ी है, मुझे तो इसके साथ दिखाई नहीं देते।"

"अब खड़े हैं, वह देख, अब इधर की तरफ चले आ रहे हैं।"

"धन्ना! तेरी नज़र तो ठीक है ? कोई दिमाग में नुक्स तो नहीं है, लगता है तेरे दिमाग में कोई गर्मी या खुश्की हो गई है और तुझे कुछ और सा दिखाई देता है।"

धन्ने ने कहा, "पण्डित जी! ऐसी बात नहीं है। प्रभु तो हलट भी चलाते हैं, खेतों में पानी भी लगाते हैं, फसल काटते भी वही हैं, भैसों का दूध भी वही निकाल देते हैं।"

पण्डित ने कहा, "फिर तू क्या करता है ?"

धन्ने ने कहा, "मुझे वे कहते हैं कि तू यहाँ बैठ, राम-राम कहे जा, मुझे यही अच्छा लगता है, मुझे आदत पड़ गई है। मैंने तो जब से संसार की उत्पति की है, तभी से सन्तों के काम किए जाता हूँ और पण्डित जी। वह मुझे काम करने ही नहीं देते।"

पण्डित समझ गया कि कुछ गड़बड़ जरूर है, कोई बात जरूर है, कोई न कोई बात है ऐसा तभी यह कह रहा है। लोग भी कहते हैं कि धन्ने का कुआं स्वंय ही चलता है, नक्के भी आप ही छूटते हैं और धन्ना आँखें बन्द करके बैठा रहता है। यही बात होगी। दिखाई तो किसी को देता नहीं। पण्डित ने प्रार्थना की, "धन्ना! मैं तुझे सच कहता हूँ कि मैंने तो तुझे ऐसे ही कह दिया था कि मैं ठाकुर को भोग लगाता हूँ, प्रभु मेरा तो भोजन कभी खाते ही नहीं थे, मैं तो खुद ही खाया करता हूँ।" कहने लगा, "धन्ना! तू ठाकुर से प्रार्थना कर कि मुझे भी दर्शन दें।"

उस समय धन्ने ने जाकर प्रभु से प्रार्थना की कि, "महाराज! मुझे इसने इस ओर लगाया है, वह मेरा गुरू है, मुरशद है, आप इसे दर्शन दें।" प्रभु कहने लगे, "धन्ना! यह तो चलाक है। चलाकों को मेरे दर्शन नहीं हुआ करते –

रे जन मनु माधउ सिउ लाईऐ।
चतुराई न चतुरभुजु पाईऐ। पृष्ठ – 324
कहु कबीर भगति करि पाइआ।
भोले भाइ मिले रघुराइआ॥ पृष्ठ – 324

तेरे मन में भोलापन था, तर्क-वितर्क करने वालों को मैं दर्शन नहीं दिया करता। धन्ना! मैं तो प्यार के वश हुआ करता हूँ, जहाँ प्यार होता है, वहाँ मैं बन्ध जाता हूँ। प्यार वाले, मेरे से जो भी उनका मन करता है, काम करवा लेते हैं, मैं उनके वश में आ जाता हूँ –

सभु को तेरै वसि अगम अगोचरा।
तू भगता कै वसि भगता ताणु तेरा॥ पृष्ठ – 962

सो इसे दर्शन नहीं हो सकते। धन्ना कहने लगा, "नहीं महाराज! कृपा करो। यदि यह मुझे आपके पीछे न लगाता तो मेरा क्या हाल होता ?" प्रभु ने कहा, "धन्ना! तूने बात मान ली, जो मान लेता है – 'मन्ने तरै तारे गुरसिख। पृष्ठ – ख' जिसके मन में निश्चय होता है, वह सिख गुरू को भी भवजल पार करा देता है। "जा धन्ना! उसे कह दे कि एक बार दर्शन देंगे। इसने जो अनघड़ पत्थर पकड़ाया था उससे यह अपनी जूतियों की कीलें ठोका करता था। तुझे कह दिया कि, यह ले जा।"

धन्ने ने कहा, "पातशाह! मेरे कारण इसे दर्शन दे दीजिए।"

धन्ने के कहने पर प्रभु ने पण्डित को दर्शन दिये।

सो वज़ीर कहने लगा, "महाराज! यदि पीर बुरा भी है पर भरोसा पूरा हो, तो भरोसा बड़ा होता है, महान होता है। उसी से तर जाया करते हैं। बाकी यदि यह बात पूरी तरह से दृढ़ विश्वास के साथ देखनी है, तो 6 महीने की मोहलत दे दीजिये। सो राजा ने मोहलत दे दी। वह कुछ राज मज़दूरों को साथ लेकर चला गया। एक जगह पर जाकर कहने लगा कि यहाँ एक पीर जुतेशाह हुए हैं। उनका किसी ने मज़ार नहीं बनाया, बहुत बड़े पीर थे, हमारे पूर्वज वहाँ जाया करते थे। अपने पैर का एक जूता उतार कर बक्से में बन्द कर दिया। वीरवार का मेला रख दिया। इश्तहार बाँट दिये। बहुत सारे लोग वहाँ चले आते हैं क्योंकि सारी बात भरोसे की होती है। सुख वरदान आने लग गये, शोर मच गया बहुत महान इकट्ठ होने लग पड़ा।

६ महीने के बाद, राजा का पुत्र बीमार हो गया। हकीम घबरा गये। वज़ीर को पूछा, "वज़ीर साहिब हकीम दवाई देते हैं पर लगती नहीं है।" वज़ीर ने कहा, "लो महाराज! पीर जुतेशाह का मज़ार है, वहाँ पर मनौत मान लो कि पीर जी! मैं आपका बहुत बड़ा मज़ार बनवा दूंगा, मेरे लड़के को तन्दरूस्त कर दो।" थोड़े दिनों के बाद लड़का ठीक हो गया और राजा बहुत बड़े जलूस के साथ बैण्ड बाजे बजवाता हुआ, मनौत देने के लिये वहाँ जा रहा था। वह वज़ीर वहाँ पहले ही चला गया। मज़दूर साथ हैं। इसने वहाँ पहुँच कर मज़ार को गिराना शुरू कर दिया। राजा जब वहाँ पहुँचा तो आधा मज़ार गिर चुका था। राजा ने कहा, "वज़ीर साहिब! यह क्या करने लगे हो ?" कहता है, "महाराज! आपके सवाल का जवाब देने लगा हूँ।"

मैंने आपको यह बात कही थी कि पीर की अपेक्षा भरोसा महान है। सो यह कोई मज़ार नहीं है, मैंने अपने पैर की एक जूती, नींव में रखकर बनाया हुआ है। अभी थोड़ी देर के बाद

निकल आयेगी। नींव खोदी गई, बक्सा बाहर निकाला, राजा को जूती निकाल कर दिखाई कि यह जूती मेरी है, इसका एक पैर दबाया हुआ था। यह मैंने मशहूर करवा दिया था भरोसे से, क्योंकि चेतन सभी जगह परिपूर्ण है, कहीं भी भरोसा कर लो, वहीं पर ही पूरा होने लग जायेगा। इसीलिये कहते हैं कि यकीन, विश्वास बड़ा है।'' सो भाई भगीरथ ने कहा, ''मनसुख जी! सारी बात प्रतीति की है।'' भाई मनसुख बोला, ''मैं भी मानता हूँ पर इस कलयुग के समय में सभी ओर पाखण्ड फैला हुआ है। बहुत साधु हैं, अपने ऐजेन्ट बनाये हुए हैं, ढिढोरा पिटवाते हैं, अखबारों में अपने नाम के इश्तहार छपवाते हैं, दूर-दूर तक अपनी महिमा करवाते हैं, बांटने वालों को पैसे देते हैं, बड़े-बड़े नये-नये ढंग अपनाते हैं तथा कई प्रकार के पाखण्ड अपनाते हैं, पर अन्दर से नास्तिक हैं और हउमैं ने सारे संसार को घेरा हुआ है। हो सकता है कि कोई एक आधा ब्रह्मज्ञानी हो, शेष कथनी ही कथनी है, वास्तविकता नहीं।

उस समय भाई भगीरथ कहने लगा, ''महाराज भी तेरी तरह ही कहते हैं, मनसुख! उन्होंने भी सारा जमाना देखा है, अन्तरात्मा से सारे स्थान देखे हैं और आपका फ़रमान है कि सच जो है बहुत कम रह गया –

धारना – करोड़ां विचों कोई है,
राम नूँ निहचे करदा – 2, 2
राम नूँ निहचे करदा – 2, 2
करोड़ां विचों कोई है,.......-2

मान अभिमान मंधे सो सेवकु नाही।
तत समदरसी संतहु कोई कोटि मंधाही॥ पृष्ठ – 51

जो सभी स्थानों पर अकाल पुरुष के दर्शन करता है वह करोड़ों में से कोई एक है। महाराज जी फ़रमान करते हैं, बाकी सारा पाखण्ड ही पाखण्ड है –

कहन कहावन इहु कीरति करला।
कथन कहन ते मुकता गुरमखि कोई विरला॥

पृष्ठ – भ्क क

बातें सभी बनाते हैं, रूहानियत का सिद्धान्त बताते हैं, कहते ही रहते हैं, निश्चय नहीं है किसी पर –

पंडित वाचहि पोथीआ ना बूझहि वीचारु।। पृष्ठ- 56

वे ग्रन्थ पढ़ते, कथाएं करते हैं कि 'राम' हर एक के अन्दर है, लेकिन वे बूझते नहीं, केवल बाते ही बातें रह गईं-

अन कउ मती दे चलहि माइआ का वापारु॥

पृष्ठ – 56

कीर्तन सुनाएंगे बहुत बढ़िया, उपदेश देगें, पर प्रबन्धकों के साथ झगड़ पड़ेगें कि तुम कम पैसे क्यों देते हो? मैं कहीं इतने कम पैसे लेकर आया करता हूँ? मुझे ग्यारह हज़ार एक घंटे के कीर्तन का देना पड़ेगा। मेरा रेट बिल्कुल मत बिगाड़ो।'' वे कहते हैं कि, ''जी! यह तो बहुत है, हम गरीब हैं।''

सो न इन्हें कुछ लाभ हुआ और न ही उन्हें कुछ प्राप्त हुआ। कुछ कहते हैं कि अमुक आदमी का नाम लेने से पैसे बहुत आयेगें। कोई कहता है कि वह न पैसे ले जाये, मैं ही ले जाऊँ सारे पैसे। यही शोर शराबा है। महाराज कहते हैं, 'पण्डित वाचहि पोथियाँ न बुझहि वीचारु।' अन्दर से माया की बातें हुआ करती हैं –

कथनी झूठी जगु भवै रहणी सबदु सु सारु॥
केते पंडित जोतकी बेदा करहि बीचारु॥ पृष्ठ – 56

वैर विरोध की बातें करते हैं, वाद की बातें करते हैं अमुक का युद्ध अमुक से हुआ, ऐसे युद्ध हुआ। ऊँचा बोलते हैं और युद्धों के प्रसंग सुनाते हैं। आत्म ज्ञान, अपने स्वरूप की पहचान, अन्दर ज्योति प्रकाश की कोई बात नहीं करते, अन्धा अन्धों को कुएं में धकेल रहा है। माया का व्यापार करते हैं –

वादि विरोधि सलाहणे वादे आवणु जाणु।
बिनु गुर करम न छुटसी कहि सुणि आखि वखाणु॥

पृष्ठ – 56

सो कहने लगे, ''मनसुख! गुरू महाराज भी तेरी वाली ही बात कहते हैं। ठीक है, संसार में पाप बहुत अधिक है, सच दिखाई नहीं दे रहा और यह युग आ रहा है कलि काल का, यह क्लेश तथा कलह का युग है, यहाँ बेताले, भूत प्रेत बने फिरते हैं, मनुष्य बने हुए –

कली अंदरि नानका जिंनां दा अउतारु।
पुतु जिनूरा धीअ जिंनूरी जोरू जिंना दा सिकदारु॥

पृष्ठ – 556

बेताल बने फिरते हैं और यह कलयुग का जो रथ है वह आग का हो गया, तृष्णा का, वैर, विरोध का, बासों की तरह आपस में काटते हैं खाते हैं। परिवार आपस में खहिंदे (जलते) हैं, एक परिवार दूसरे परिवार से जलता है ईर्ष्या करते हैं, एक मोहल्ला दूसरे मोहल्ले से ईर्ष्या करता है,़ एक धर्म वाला दूसरे धर्म वाले के साथ ईर्ष्या करता है। एक देश वाली कौम दूसरे देश वाली के साथ जलती है, कहते हैं – आग लगी हुई है, इस युग में। वैर विरोध में आकर बासों की तरह जल-जल मर रहे हैं। धर्महीन होने के कारण जीव जो है, भूत बन गया है। जो पूर्व युग थे, उन में सत्य था। सतयुग में –

सतजुगि सतु तेता जगी दुआपरि पूजाचार॥ पृष्ठ-346

इन तीन युगों के अन्दर सतयुग जो था उसके चार पैर थे, उसमें सत्य था, यज्ञ था, पूजा थी, दान था, फिर क्या हुआ सतयुग

बीत गया –

सतजुगि धरमु पैर है चारि॥ पृष्ठ – 880

चार पैर थे – सत्य का, यज्ञ का, पूजा का और दान का।

त्रेतै इक कल कीनी दूरि॥ पृष्ठ – 880

त्रेता युग के लोग सत्यवादी न रहे और तीन पैर रह गये यज्ञ रह गया, पूजा रह गई और दान रह गया –

दुआपरि धरमि दुइ पैर रहाए॥ पृष्ठ – 880

द्वापर में दो पैर टूट गये – एक सत्य टूट गया, एक यज्ञ टूट गया, पूजा और दान ने आकर धर्म का बैल तोड़ दिया –

कलजुगि धरम कला इक रहाए।
इक पैरि चलै माइआ मोहु वधाए॥ पृष्ठ – 880

अब एक ही पैर से चले जा रहा है, इसे भी कलयुग तोड़ने लगा हुआ है। यह दान का पैर है, पर यह चलता नहीं है क्यों नहीं चलता? महाराज कहते हैं –

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु।
नानक निहफल जात तिहि जिउ कुंचर इसनानु।।

पृष्ठ – 1428

दान देकर व्यक्ति अपना आपा निजित्व, प्रकट कर रहा है। तीन तरह के दान हैं – तमोगुण दान, रजोगुण दान, सतोगुण दान। तमोगुण – खींझ कर दिये गये दान को कहते हैं कि मुझे बुरा या गरीब न समझा जाये। अपनी ताकत से अधिक दे रहा है। रजोगुण वाला कहता है जी! मेरे नाम का पत्थर लगवा दो। मेरा नाम लिखो, लोगों को पता चले कि मैंने दान दिया है। ये तो दोनों ही गये नष्ट। सतोगुण वाला कहता है – गुप्त दान ले लो, लिखना विखना कुछ नहीं है, ठीक है, मुझे परमेश्वर ने दिया है उसमें से कुछ हिस्सा निकाल कर दे रहा हूँ।

सो इस तरह कहते हैं कि चारों पैर टूट गये अब गुबार भर गया। काली घनेरी अमावस्या का अन्धकार छा गया, धर्म रूपी चन्द्रमा अलोप हो गया। कलयुग में कर्म-धर्म नहीं चल सकते, अब क्योंकि मौसम बदल गया –

कलजुग महि बहु करम कमाहि।
ना रुति न करम थाइ पाहि।
कलजुग महि राम नामु है सारु॥ पृष्ठ – 1130

कलयुग में एक परमेश्वर के नाम के साथ चलना है, सो महाराज कहते हैं कि नाम है नहीं, नाम अलोप हो गया, वाद-विवाद रह गया, झगड़े फसाद रह गये, एक धर्म दूसरे धर्म के साथ ईर्ष्या करता है, एक दूसरे को मारकर दफनाना चाहते हैं, जबरदस्ती धर्म परिवर्तन करवाते हैं, चलाकियों से धर्म परिवर्तन करवाते हैं, अपने पीछे लगाते हैं, जो सच था वह तो दिखाई देता ही नहीं –

कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ॥

पृष्ठ – 145

पता नहीं कि सच कहाँ चला गया। इस तरह पढ़ लो –

धारना – पिआरे कूड़ दा हो गिआ वरतारा,
सच्च वाला काल पै गिआ – ख, ख
पिआरे जी! सच्च वाला काल पै गिआ- ख, ख
पिआरे कूड़ दा हो गिआ वरतारा,...........-ख

सचि कालु कूड़ु वरतिआ कलि कालख बेताल।
बीउ बीजि पति लै गए अब किउ उगवै दालि।
जे इकु होइ त उगवै रुती हू रुति होइ।
नानक पाहै बाहरा कोरै रंगु न सोइ।
भै विचि खुंबि चड़ाईऐ सरमु पाहु तनि होइ।
नानक भगती जे रपै कूड़ै सोइ न कोइ॥

पृष्ठ – 468

जैसे तू कहता है कि तुझे भी सच का कहीं भी पता नहीं चल पाया। मेरे सतगुरू तो संसार को देख कर कहते हैं कि अकाल पड़ गया और कलयुग की कालिख ने लोग भूत बना दिये, मनुष्य तो नज़र ही नहीं आ रहे – कलि कालख बेताल कालिमा लग गई सभी के हृदयों में जो भूतने बन गये। फिर 'बिओ बीज पति लै गए।' जिनका निश्चय एक पर ही है, उस वाहिगुरू पर है वे तो अपनी मत ले गये 'अब किऊ उगवै दालि।' कभी इसे मान, कभी उसे मान, इसका भी स्थान, उसका भी स्थान। प्यार तो एक के साथ होता है कि सभी के साथ होता है? यहाँ भी सिर झुका, वहाँ भी सिर झुका, अमुक देवता को भी मान ले, उसे भी मान ले, इसे भी मान ले। ऐसे कुछ नहीं बनने वाला क्योंकि गलत रास्ते पर चल पड़ा मनुष्य। यह दाल तूने बो दी, पर दाल अभी तक उगी नहीं। 'जे इकु होई त उगवै रूती हू रुति होइ।' (पृष्ठ – 468)

ऋतु होनी चाहिए, तब दाना हरा होता है, यदि उसी मौसम का दाना बोया जाये और फिर एक पर भरोसा हो। एक दाना हो, तब उगता है। दाने के दो टुकड़े कर दो, नहीं उगेगा। यहाँ तो दाने के कई-कई टुकड़े हुए पड़े हैं। कितनों पर भरोसा है हमारा? कितनी चीज़ों को हम मानते हैं? फिर एक के साथ तो बात न हुई। सो महाराज कहते हैं – 'नानक पाहै बाहरा कोरै रंगु न सोइ॥' (पृष्ठ – 468)

सतगुरू के बिना इस कोरे को रंग नहीं चढ़ा करता 'भै विचि चड़ाई सरमु पाहु तनि होई।' गति जाती रही, प्रेमा भक्ति अलोप हो गई। उसके साथ दया भी अलोप हो गई, धर्म भी चला गया, क्षमा, अहिंसा, सत्य, दान, धीरज आदि सभी चीज़ें अलोप हो गई और अन्धेरा छा गया। अब शेष रह क्या गया? अन्धेरा रह गया या चतुराई रह गई। चाहे साधु है, चाहे सन्त है, चाहे डेरे वाला

है चाहे कोई भी है, साध संगत जी! शोर शराबा ही है, सभी जगह कहते हैं कि वह सन्त यहाँ दीवान न लगा जाये, यदि एक भी दीवान लगा गया, तो मेरी कीर्ति कम हो जायेगी। वह बहुत पैसे लेता है, उसकी निन्दा किसी न किसी तरीके से करें। ये तो साधु सन्तों की बातें हैं, बाकी दुनियाँदारों को तो तुम जानते ही हो। अब रह क्या गया, पापों का व्यवहार हो गया?

सो भगीरथ ने कहा, ''मनसुख जी! आप इस बात में ठीक हो, पर सच है, सच का सूरज निकल आया है।''

सो इस प्रकार वचन करते हैं, बहुत ही गौर के साथ सुन रहा है भाई मनसुख! कहने लगा, ''भाई भगीरथ! तूने तो आज बहुत ही अज़ीब बातें सुनाई हैं, मेरे हृदय के अन्दर कुछ होने लग पड़ा है और अब हम सौदा इकट्ठा कर लें और रात को आप मेरे पास ही ठहरना। आप कृपा करना, कुछ थोड़ा बहुत समय निकाल लेना, हम और वचन भी जारी रखेंगे क्योंकि बहुत ही आनन्द आ रहा है और मुझे भी कुछ-कुछ प्रकाश की किरण दिखाई देने लग पड़ी है। सो अब समय इज़ाज़त नहीं देता। यहीं पर ही मैं समाप्त करता हूँ और सभी प्रेमी गुरू सतोतर में बोलो, आनन्द साहिब में बोलो, जो अभी तक नहीं बोले, वे भी अपनी रसना पवित्र कर लें। महाराज ने कृपा की तो इससे आगे फिर विचार करेंगे।

- आनन्द साहिब -

- गुरू सतोतर -

- अरदास -

श्री सन्त ईश्ऱर सिंघ जी महाराज

ज्ञानी मेहर सिंघ जी

कलकते का दौरा

अफ्रीका से लौटने के पश्चात पंजाब के बाहर रहने वाली संगतों ने भी फिर लाभ प्राप्त करने की लालसा प्रकट की। कलकता के गुरमुखों ने बन्ता सिंघ जी खटड़ा को निमन्त्रण देकर भेजा। सन्त जी महाराज ने स्टेशन वैगन द्वारा सफर करने की सलाह बनाई। इसके दो लाभ थे। एक तो सफर सांझा आरामदेह तथा मनमर्जी का था, जहाँ चाहो आराम कर सकते थे। सो आप जी ने यह यात्रा तीन दिन में पूरी की और साथ ही रास्ते में कथा कीर्तन तथा दर्शन मेले के प्रवाह भी चलते रहे। कीर्तन और फिर गुरू लंगर की परम्परा सन्त जी महाराज की बुनियादी बात है जो वह हर स्थान पर चलाया करते हैं।

कलकता में सिंघ सभा के स्थान जगत सुधार में पहले लंगर नहीं चलाया जाता था। आये-गये प्रेमी सज्जन खाना स्वंय बनाकर खाया करते थे। पहली बार सन्त ईश्ऱर सिंघ जी महाराज जब यहाँ कीर्तन करने आए, तब आप जी ने लंगर की बात चलाई। जब पता चला कि यहाँ लंगर प्रथा नहीं, है तब आप जी ने कहा था, ''भाई ! जहाँ गुरू का लंगर नहीं, वहाँ गुरूद्वारे का भी कोई बहुत महत्व नहीं हुआ करता। लंगर द्वारा ही तुम गुरूद्वारे के प्रबन्ध और उसकी मर्यादा और फिर अच्छे स्वच्छ प्रबन्ध का अनुमान लगा सकते हो। बिना लंगर के खालसा जी का स्थान अधूरा है और सिखी मर्यादा के अनुकूल नहीं है।'' सो आप जी ने लंगर चालू करवाया जो अब तक भी चलता आ रहा है।

सन्त जी महाराज के दो महीने के कीर्तन का फल यह हुआ कि जहाँ रोज ही लोग शराब पीकर शाम को कल्बों, होटलों और पार्को का रास्ता पकड़ते थे, अब महाराज जी के यहाँ हाज़िरी लगवाने तथा हरि यश गायन करने तथा सुनने में व्यतीत करने लगे। सैकड़ों ही सज्जनों ने शराब का त्याग कर दिया तथा कुसंगति को छोड़ कर सुसंगति में आने लगे। सैकड़ों ही नितनेमी बन गये और उताम कर्म लोगों के मालिक सज्जनों ने सिमरण तथा साधन की ओर भी ध्यान दिया और लिव द्वारा आत्म देश की सैर करने के प्रयास आरम्भ किये। खटड़े वाले सरदारों के परिवार की महानता यह थी कि वे पहले से ही सन्त सेवी थे अब और भी धीरज धर्म वाले बन गये।

रांची का दौरा

रांची बिहार की अति रमणीक तथा शानदार राजधानी नम्बर दो हैं। जिस प्रकार चण्डीगढ़ से पहले पंजाब सरकार गर्मियाँ शिमले बिताया करती थी, इसी तरह बिहार की राज सरकार के कई दफ्तर, कई बार रांची चले जाया करते थे। रांची एक बहुत बड़ी फौजी छावनी भी है और बिहार, बंगाल जाने वाले हर बड़े जत्थे को यदि रांची जाने का मान प्राप्त हो, तब वह प्रसन्न हो जाता है।

रांची के मिलट्री के ठेकेदार सरदार बलवन्त सिंघ जी ने अन्य संगत को साथ लिया और कलकते से सन्त जी महाराज से समय लेकर रांची दर्शन देने के लिये प्रार्थना की। सरदार दर्शन सिंघ जी की नई कोठी का उदघाटन, आप जी द्वारा अखण्ड पाठ के उपरान्त करवाने की प्रार्थना की गई। मार्च क-भ्फ को संगतों का प्रेम इतना प्रबल था कि कारों तथा बसों द्वारा सैकड़ों प्रेमी सन्त जी महाराज के साथ ही रांची पहुँच गये और वापिसी पर पुनः जल्दी ही कलकते के भ्रमण के वायदा करने पर आप जी के दर्शन करके लौट आये। रांची के बाहर ही सिख संगते सन्त मोहन सिंघ जी सहित स्वागत के लिये पहुँची। आतिशबाजी तथा फोके फायर छुड़ाकर खुशियाँ प्रकट की गई। दीवान आरम्भ हुए। संगतों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती चली गई। आम लोग तथा फौजी भाई दर्शन किया करते थे। फिर कई बड़े अफसरों के घर चरण रखने को कहा। सो प्रवान होने के बाद लगभग प्रत्येक प्रेमी की भावना को पूरा किया। पर संगतों की यह इच्छा कि हर घर में सन्त जी के पवित्र चरण पड़ें, सन्त महाराज कभी भी पूरी न कर सके। रांची से लौटते समय कानपुर सिंघ सभा में दीवान सजाने के पश्चात, तख्त श्री हरिमन्दिर पटना साहिब में चरण रखे। दीवान सजते रहे। तख्त साहिब की ओर से सन्त जी महाराज को सिरोपा श्री साहिब तथा 125 दमड़े (रुपये) भेंट किये गये। सन्त जी महाराज ने जीवन आदर्श को मुख रखते हुए 125 रुपये अपनी तरफ से और मिला कर तख्त साहिब को भेंट कर दिये और फिर कड़ाह प्रसाद की खुली देग तथा लंगर के लिये भी और माया भी भेंट की। सन्त जी महाराज का नियम था कि किसी भी गुरुद्वारे, धर्म स्थान तथा स्कूल कालिज से दीवानों के समय कोई माया नहीं लेनी बल्कि अपनी ओर से और भेंट देना। यह नियम जीवन प्रर्यन्त निभाते रहे।

कश्मीर क्यों गये ?

सन्त जी महाराज एक महिला की प्रार्थना तथा रोज की अरदास सुनकर मन्सूरी गये थे। पर जल्दी ही वहाँ से चल कर पता नहीं

क्यों जबरदस्ती कश्मीर की तरफ चल पड़े थे। मानो कोई महान चुम्बक खींच कर उन्हें लोहे की तरह अपनी ओर लिये आ रहा हो। संगत के प्रेमी हैरान भी थे पर बाबा जी मस्त थे। वे जानते थे कि सन्त जी महाराज को, काफी देर के पश्चात हम समझ पाते हैं कि वह कहाँ और कब जाते हैं ?

मन्सूरी से वापिस आने के पश्चात सन्त महाराज जी ने फ़रमाया था: ''भई! ऐसा प्रतीत होता है कि कश्मीर की बर्फीली ठण्डी छायाँ के नीचे हृदय कुरला रहा है। हमें अन्दर से निमन्त्रण आया है। जल्दी पहुँचो।'' दूसरे दिन तैयारी हो गई। सरदार करनैल सिंघ ग्रेवाल, गुरदयाल सिंघ फोटो ग्राफर, बाबू काहन सिंघ, बहादुर सिंघ कार ड्राईवर थे। दूसरे ही दिन आप श्री नगर पहुँच गये। रिहायश के बारे में कोई इन्तज़ाम करने हित सेवक एक ओर चल पड़े। सन्त जी महाराज बाबू जी सहित डल झील की तरफ गाड़ी में ही चल पड़े।

गाड़ी अभी थोड़ी ही दूर गई थी कि एक और गाड़ी ने आकर रास्ता रोक लिया और गाड़ी रोकी तो सरदार दलजीत सिंघ कोका कोला तथा उनकी धर्म पत्नी ने आकर चरण पकड़ लिये और दहाड़े मार-मार कर कहा था,''गरीब निवाज! हम हर समय आपको तकलीफ देते हैं। हर विपता के समय आप हमारा बाजू आ पकड़ते हो। हम तीन दिन से कुरला रहे हैं। हमारा कोई बस नहीं चलता।'' वे सन्त जी महाराज को उस स्थान पर ले गये जहाँ बज़ेर हाऊस बोट घर में रिहायश थी और बताया कि उनका छोटा लड़का तीन वर्ष का, किसी तरह से बज़रे की सीढ़ियों से झील में गिरा और फिर लौट कर नहीं आया।

सन्त महाराज अर्न्तध्यान होकर खड़े हो गये तथा फ़रमान किया कि वह बच्चा कहीं सैर करने चला गया है पर अब वह लौट कर नहीं आयेगा। दूसरे वर्ष दूसरे शरीर में जरूर तुम्हारे ही घर, तुम्हारी ही गोद में आयेगा। सो यह दम्पति आज्ञा लेकर दिल्ली वापिस लौट आई पर अब मन दुखी तथा बैचेनी से भरा हुआ नहीं था, मन में एक बहुत भारी भरोसा विश्वास था जो सदा की तरह हर समय ही सन्त जी महाराज से इस परिवार को प्राप्त होता था। यह सच है कि अगले वर्ष नवजात शिशु आया जो चिरंजीवी है।

यह ठीक है कि जत्थे को भ्रमित करने के लिये आप जी ने कश्मीर की सैर भी की। निशात शाही बाग, शालीमार तक भी गये फिर कुदरत की बक्शीश के कारण बने हुए फूलों के अद्वितीय गुलदस्ते गुलमार्ग भी पधारे तथा कुदरत की महान कारीगरी में मस्त होकर वाह-वाह के आत्म नाद भी उच्चारण किये। कई घंटे अफूर तथा अचल, अटल समाधियां भी लगाईं थीं। शालीमार के मालियों ने आप जी की सौगात के रूप में, कश्मीर के फूलों के घर तथा गुलदस्ते भेंट किये। आप जी ने उन्हें खुशियां बाँटने हेतु, हर माली को जो भी उपस्थित हुआ दो रुपये दिये थे।

यह कैसे हो सकता था कि सिख संगतों को महाराज जी की आमद का पता न चले और वे हाजिरी लगा कर उन्हें खुले दर्शन तथा कीर्तन करने के लिये प्रार्थना न करें। सो संगत पहुँची, ऐतिहासिक गुरुद्वारा स्थान गुरु गोबिन्द सिंघ साहिब में चरण रखे और फिर रात के समय साजी न होते हुए भी लोकल साज-बाज वालों के साथ, हरियश गाने लगे। हरि रंग तथा मस्त दीवाने, आप जी की आन्तरिक दिल से निकली हर बात सुनकर उसी ही रंग में लीन हो गये। जिनके अंदर सत के नाम का प्रकाश है वह जब भी, जहाँ भी जिस भी रंग में बोले, लोगों के मनों में उसका प्रभाव सपष्ट ही होता है।

सन्त की श्रापी धरती

बच्चे सदा ही अक्खड तथा खरूदी (अल्हड़) होते है। कई बार उनके द्वारा की गई शरारत तथा गलत करतूत का फल बड़ों को भुगतना पड़ता है। यह एक प्रसिद्ध वार्ता है कि यादवों के बच्चे जो श्री कृष्ण महाराज के कुल के होने के कारण बहुत ही खरूदी तथा अहंकारी हो गये थे। इन्होंने दुर्वासा ऋषि के साथ मखौल किया था। पेट पर लोहे की बाल्टी बान्ध कर एक लड़के को लड़की का भेष बनाकर सन्त जी के सामने पेश किया और कहा,''बताइए, मुनि जी! इस लड़की के क्या उत्पन्न होगा?'' अर्न्तयामी ऋषि ने कहा,''इससे वह पैदा होगा जो तुम्हारे कुल का नाश करेगा।'' और ऐसा ही हुआ। भगवान कृष्ण भी उस ऋषि के श्राप से मुक्त नहीं हो सके। बल्कि वह भी उसी तीर का शिकार हुए जिसके अन्त में उसी लोहे की चोंच लगी थी। नगर सेड़ेवाल बुर्ज के पास बग्गड़िया भाई जी ढढोमल तथा सन्त अतर सिंघ जी महाराज मस्तुआणे वाले गुरू स्थान के पास ही, सन्त महाराज के प्रेमी सज्जनों ने धरती खरीदी थी जो सिआड़ के रहने वाले थे। भाग सिंघ जी तथा उनके भाई नगर छोड़ कर सेडेवाल बुर्ज में ही आकर बस गये थे।

इस नगर की धरती पर एक नागा साधु आकर बैठ गया जो गर्मियों में भी धूनी तपाया करता था। नगर के लड़कों ने शाम के समय सन्त को आ घेरा और एक ने कहा, ''बताइए, सन्त जी! नगर के भाग्य कैसे जागेंगे?'' मज़ाक देखकर सन्त जी ने सहज ही खीझ कर कहा,''तुमने मेरे वस्त्र फाड़े, मुझे कोई चिन्ता नहीं, पर तुमने मेरे बहुमूल्य धार्मिक ग्रन्थ भी फाड़ दिये हैं। सो लो! ''उसने कपड़े तथा ग्रन्थ सभी के सभी एक गठड़ी में बान्ध कर जला दिए और फिर स्वयं जलने के लिए तैयार हो गया

था कि पंजाब सिंघ ने आकर पकड़ लिया। साधु ने श्राप दिया, ''मेरा सामान जल रहा है। इसी तरह से यह नगर पानी के लिये तड़पेगा और जलेगा।'' इस नगर का पानी सूख गया और फिर हर घर में मानो आग ही बरसती थी। कपड़े भी जलते थे शरीर भी जलता था। माद्री आये पर श्राप को कौन धोए? केवल एक ही घर जिसने साधु को बचाया था, वही बच गया। शेष सारे घरों को आग की मार थी। कपड़े, नोट आदि भी जल जाया करते थे।

छोटे सन्त जी महाराज ने इस नगर की प्रार्थना सुनकर कहा, उसी साधु को ही ढूढों और प्रायश्चित करो। परन्तु लाख यत्न करने पर भी वह साधु न मिला। फिर कहने लगे परमात्मा के लोगों को सताने वाला कभी सुखी नहीं रह सकता। फिर प्रायश्चित तो मन से ही हो सकता है। यदि ऐसा नहीं होता तो वह कष्ट पुनः भी आ सकता था। हर घर में रहने वाले सभी लोगों ने क्षमा माँगी और कहा कि आगे से किसी साधु से तो क्या, वे किसी अजनबी के साथ भी धक्काशाही नहीं करेंगे।

सन्त जी महाराज ने दो महान नेमी तथा गिआनी सज्जन भेजे कि मलीनता से बचा कर, मन, वचन तथा कर्म से गुरबाणी पर आश्रित होकर अरदास करें, फिर घरों में उतने दिनों तक कोई झूठ-मूठ तथा दुर्वचन न बोलें। सारा ही परिवार, शुद्ध आहार करे तथा शुद्ध आचरण करे।

पाठ आरम्भ हुआ, सारा ही घर गुरू की हजूरी में स्वच्छ क्रिया तथा मन वचन अनुसार जुट गया। पर वह बच्चा जिसने सन्तों को सताया था। दूसरे दिन कहने लगा, सच्चा एवं पवित्र रहना है, हमने पैसे खर्च करने हैं, और कुछ नहीं करना। कुदरत की खेल देखो कि उसी समय उसके वस्त्र जल गये और वह तड़प उठा। मैं जल रहा हूँ। फिर ऐसा शुद्ध हुआ कि सांस भी सुनाई नहीं देता था और पूरा शुद्ध मन करके पाठ सुनता तथा सेवा करता था। फिर कहीं जाकर पाठ के भोग के पश्चात घर में आराम हुआ और सुख शान्ति हुई। घर तथा नगर के लोगों ने महाराज तथा आई हुई संगत की हर प्रकार से सेवा सुरक्षा की। फिर समाप्ति के समय सारे ही नगर ने प्रायश्चित किया तब जाकर कहीं सुख का सांस लिया। सारा ही नगर सन्त सेवी बन गया।

सन्त जी महाराज ने बाहर पलंग पर बिराजमान होकर नगर को सम्बोधन किया, ''यह ठीक है कि हम किसी भी सन्त साधु की सेवा न करें पर इतना तो कर सकते हैं कि किसी को दुख न दें। दुखी हृदय से निकली पुकार सीधी परमात्मा के द्वार पर पहुँचती है।''

सन्त महाराज के प्रचार दौर

सन्त महाराज जी ने जीवन के आन्तिम बीस वर्ष निरोल परोपकार तथा लोक भलाई के साधनों में ही बिताये थे। आप लोक सेवा के समय कभी कभी शारीरिक क्रिया भी भूल जाया करते थे। शरीर अब कष्ट सहन करने के लायक नहीं था, फिर भी आप इससे भी अधिक कार्य करने के आतुर थे।

आज आप राड़े साहिब में कीर्तन कर रहे हैं तो दूसरी ही रात को दिल्ली के बिड़ला मन्दिर के बाहर कीर्तन करते हुए दिखाई देते थे। फिर वहाँ से दीवान समाप्त होते ही थे कि यू. पी. का नम्बर लग जाता था। हापुड़, गाज़ियाबाद, लखनऊ फिर हरिद्वार, बिलासपुर से लेकर नानक मता तक सारा ही सिख हलका उनकी चरण धूलि को बार-बार प्राप्त करता था। हर समय सन्त के खोजी आप जी को चौतरफे से घेरे रखते थे। लोक भलाई की यह दशा थी कि एक हाई स्कूल पूरा होता, तो वह कालिज बना दिया जाता और फिर वह सरकार को लाखों रूपये सहित देकर भी आराम नहीं किया। फिर स्कूल की इमारत और बनानी पड़ी।

गुरूद्वारा करमसर तो और बढ़ना ही था उसकी हर चीज़ें जो पहले बड़ी थी अब छोटी होकर रह गई थीं। दीवान स्थान पहले से ही काफी बड़ा था, अब वहाँ मजबूरी में ही दीवान सजते थे क्योंकि यह जगह तो रोजाना के दीवानों के लिये ही कम पड़ती थी। सालाना तथा बड़े दीवानों के लिये कोई स्थान नहीं था। श्री हरि मन्दिर के सामने ही जगह को बाहर से खाली करके सारा ही खोल दिया। पहले विचार था कि क-क्ख कमरे ही बहुत होंगे, फिर ख बने, अब सैकड़ों तक की कहानी भी पूरी हो गई, पर संगत की बहुत आमद ने हर चीज़ तथा हर जगह को भी छोटा करके बना दिया था।

गुरूद्वारे के बाहर ही कुछ दुकानों जो कभी लंगर की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिये हर समय, विशेष रूप से चाय, लंगर आदि की पूर्ति होती थी, यही देख कर बनाई गई थीं। अब और भी कई दुकानें बन गई हैं। मध्यम श्रेणी का हस्पताल है जो पहले गुरूद्वारे का था अब वह सरकार को सौंप दिया है, पर दवाईयों की कमी को हर समय महसूस किया जाता है।

हम सन्त जी महाराज की व्यस्तताओं के बारे में चर्चा कर रहे थे। पहले दीवानों की संख्या सैकड़ों, फिर हज़ारों और अब अन्तिम वर्षों के अन्दर लाखों तक पहुँच चुकी थी। विशेष रूप से लुधियाना शहर तथा नगरों की तो यह हालत थी, वहाँ हर जगह मेला ही लग जाता था। पहले तो सरदार परमजीत सिंघ या फिर और अन्य बसों वाले प्रेमी, बसें चलाकर संगत को ले आया करते थे। लुधियाना से भी संगत रात के समय ही करमसर आकर वापिस चली जाती थी पर अब हर तरफ से संगत आकर डेरे में पहुँचती है। लुधियाना, कोटला, सरहन्द, खन्ना, अहमदगढ़,

दोराहा, सूबा राड़े साहिब से लगभग दस बार बसें अलग-अलग स्थानों के लिये चलती हैं, पर फिर भी गुरूद्वारे में संगत की हर समय आवाजाई बनी रहती है। लंगर किसी समय दो अंको तक ही सीमित था फिर सैकड़ों तक होने लगा, फिर पाँच सौ से लेकर हज़ार तक प्रेमी रोज ही भोजन करते हैं और सक्रान्ति तथा पूर्णमाशी की हाजिरी 10-15 हजार से कभी कम नहीं होती।

कुर्सी

सन्त ईशर सिंघ जी महाराज राज योगी थे तथा वे बाबा साहिब सिंघ जी बेदी तथा बाबा बीर सिंघ जी नौरंगाबाद, बाबा महाराज सिंघ जी, उस सम्प्रदाय के स्तम्भ थे जो बाकायदा दरबार लगाते थे। बड़े-बड़े लोग दरबार में हाजिरी लगाया करते थे। बाबा जी के फोटो जो आज भी मिलते हैं, अन्दर भी सिंघ साहिब महाराजा रणजीत सिंघ और उनका शाही परिवार बाबा जी की हाज़िरी में बैठा दिखाई देता है। उनके बराबर में पीछे बाबा बीर सिंघ जी नौरंगाबाद तथा अन्य सन्त समाज के प्रमुख बैठे दिखाई देते हैं।

पहले जब संगत की आवाजाई काफी बढ़ी, तो सन्त महाराज ने लोगों को अधिक समय देने के लिये ही कुर्सी का ढंग चलाया था। मतलब तो लोक सम्पर्क था ताकि हर एक प्राणी को जो उन्हें मिलना चाहे दर्शन करके लाभ प्राप्त कर सके। फिर इसी समय खुले तौर पर जहाँ आत्मिक तथा महानता सिमरण साधन की बातें चलती थीं। वहाँ पर कई बार राजनैतिक दावपेचों की चर्चा भी हो जाया करती थी। उस समय सन्त जी अपनी राय दिल खोलकर दिया करते थे।

जिस समय पंजाबी मोर्चे के समय सन्त फतह सिंघ जी ने सन्त महाराज को कहा था कि, ''आप खालसा पंथ की बागडोर सम्भालो, तब पन्थ उन्नति की ओर जायेगा साथ ही जो कमी तथा नुकसान किसी और व्यक्ति में होकर सारी कौम के लिये हानिकारक सिद्ध हो सकता है, वह नहीं रहेगा।''

सन्त महाराज जी ने तुरन्त ही फ़रमान किया था, ''सन्त जी! राजनैतिक लड़ाई तो अंगारों की भट्ठी है।''

आप स्वयं एकान्त तथा कीर्तन की शान्ति भरी जिन्दगी छोड़ कर इस भट्ठी में पड़ गये। अब वही भट्ठी हमें दिखाते हो। कृपा करके हमें क्षमा करो। वैसे हम गुरू पन्थ के दास हैं। हर समय उसकी उन्नति तथा महानता के लिये प्रार्थना करते हैं। पन्थ गुरू का रूप है फिर कोई गुरू का सिख उससे दूर तथा अलग हो भी कैसे सकता है? हम, हर समय तुम्हारे साथ हैं। राजनैतिक लड़ाई छोड़कर गुरू पन्थ की उन्नति तथा अमृत प्रचार धर्म की उन्नति के साधन हर समय करने को तैयार है। पर आगे होकर मोर्चा चलाना, राजनैतिक चालें चलकर एक दूसरे को मात देने का षड़यन्त्र रचना, अपने पाप को छिपाकर दूसरे की छोटी मोटी भूल को शेर तथा अपनी पहाड़ जैसी गलती को सेवा बताना, यह हमसे नहीं हो सकता। सो आप जो ठीक समझते हो, करते रहो। हमारे वश की बात यह बिल्कुल ही नहीं है। हाँ, अमृत प्रचार, सदाचार, फिर नशों के प्रयोग का विरोध, ये ऐसी बातें हैं जिसका हम लोगों में प्रचार करते हैं। उसका लाभ गुरू पन्थ को ही पहुँचता है। पनीरी तो हम बनाते हैं फिर आप उसके वृक्ष बना लो, यह मुश्किल नहीं है।''

हम बात कुर्सी की कर रहे थे, महापुरुषों की कुर्सी किसी गुरूडम का दिखावा बिल्कुल भी नहीं था। वे कभी भी अपने आप को सतगुरू जी के, किसी भी तरह, कोई अंग भी नहीं मानते थे बल्कि किसी समय कोई गुरू ग्रन्थ साहिब के आदर में फर्क दिखाई देता तो झाड़ दिया करते थे। उन्होंने कभी किसी को गुरू मन्त्र देकर सिख नहीं बनाया। वे सदा ही जब कोई शबद के साधन सिमरण की बात करता तो पहले ही कह दिया करते थे, ''आप पाँच प्यारों से अमृत की दात प्राप्त करके गुरू मन्त्र धारण कर चुके हो कि नहीं? यदि नहीं तो तुम सिंघ रूप में निगुरे हो। सिखी में गुरू से गाँठ केवल पाँच प्यारों द्वारा ही पड़ती है। केश धारण किये बिना, पाहुल के बिना भेखी भ्रमित सिख है।''

जो आदमी सन्त जी महाराज के कट्टर विरोधी तथा उनसे सदा ही दूर रहे वे भी यह नहीं बता सकते कि सन्त जी महाराज का कोई और भी राह सिखी के अतिरिक्त था।

कमादो फार्म पर भूत

अहमदगढ़ मण्डी के कई सन्त महाराज के प्रेमियों ने आकर कमोदे में सरदारों से धरती मोल ली। यह उस समय तो कौड़ियों के भाव केवल 50-60 रूपये और फिर ज्यादा से ज्यादा 100 रूपये एकड़ में मिल जाती थी। करतार सिंघ जी तथा उनके भाईयों ने धरती को आबाद किया। इसी जंगल में पीपल के पेड़ों की भरमार थी। चारों ओर लकड़ियों के ढेर लगे हुए थे। कोई एक वृक्ष खास जरूरत के लिये रख लिया। एक नौकर ने उस वृक्ष के पास बैठकर पेशाब कर दिया। उसी समय घर में ईटों तथा गन्दगी की वर्षा होती दिखाई दी।

घर की बहुएं दूध रिड़कना शुरू करती तो चाटी (मटकी) बीच में से ही टूट जाती। आग पर रखा दूध का मिट्टी का बर्तन (काड़ना) चक्कर खाकर गिर पड़ता। चलते-चलते कोई पीछे से पत्थर आ लगता। पाठ कराने की सोचें तो चन्दोआ भी पत्थरों से भरा हुआ मिलता। डर के मारे कोई पाठ भी न करता। करतार सिंघ ने परिवार के जीवों ने, सन्त महाराज के पास प्रार्थना की कि हमारे घर से यह संकट दूर करो। करतार सिंघ के प्राणियों ने

सन्त महाराज के गुरूद्वारे से प्रसाद मंगवाया और हुम्म दिया, उस अमुक वृक्ष के नीचे रख दो, वह अभी अभी मुक्त हो जायेगा। हमें भी जब समय मिला उस स्थान पर आ जायेंगे।

प्रेमियों ने वह प्रसाद उस बरोटे (वृक्ष) के नीचे रख दिया। उसी दिन से वह सारी धीगा मस्ती बन्द हो गई और फिर कभी भी कोई शिकायत न आई।

सन्त महाराज जी दिल्ली जाते हुए, पिपली से कुरूक्षेत्र होते हुए कच्चे रास्ते ही कमौदे गए तथा इस फार्म के लोगों की प्रेम भावनाएं सुनी। सभी सेवकों, बहनों, भाईयों ने धन्यवाद के रूप में भेंट हाज़िर की। विशेष तौर पर पूर्वी नौकरों ने प्रेम सहित नमस्कार करके कहा था, ''यदि आपकी कृपा न होती, तो हम में से कोई भी यहाँ न टिक सकता।''

(चलता -)

किव सचिआरा होईऐ ?

सन्त वरियाम सिंघ जी
बानी एवं संचालक वि. गु. रू. मिशन

पिछले अंक में हठ-योग के बारे वर्णन किया गया था। जब हम इनके विवरण पर ध्यान देते हैं तो हमें इस मार्ग पर चलने के बारे में पता चलता है। योग साधना साधने के लिये दस नेम हुआ करते हैं, दस यम अपनाने पड़ते हैं। यम और नेम एक प्रकार से मानसिक तथा शारीरिक रहत (मर्यादाएं) थीं, जिसकी पाबन्दी साधक के लिये जरूरी थी क्योंकि योग साधन, साधने के लिये पूरी तरह से स्वच्छ होना आवश्यक है। उनका विवरण संक्षेप में इस प्रकार है कि यम दस प्रकार के हैं जिनमें अहिंसा, झूठ का त्याग, चोरी न करना, जत धारण करना, धीरज क्षमा, दया, कोमल हृदय, मर्यादा पूर्वक भोजन करना और शरीर को हर प्रकार से पवित्र रखना आवश्यक है। अहिंसा तीन प्रकार की होती है -

(क) मन की अहिंसा (ख) बोल (वचन) की अहिंसा (ग) देह (शारीरिक) अहिंसा।

क. मन की अहिंसा - मानसिक तौर पर किसी के बारे में बुरा न सोचना और सदा इस भावना में रहना -

नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाणे सरबत का भला।

ख. वचनों की अहिंसा - कभी भी किसी को कड़वा या फीका न बोलना, सदा ही मीठे-मीठे वचन बोलना। गुरू महाराज जी भी फीका बोलने के लिये मना करते हैं और फ़रमान करते हैं कि फीका बोलने से तन और मन का रस खत्म हो जाता है और मनुष्य में भी फीकापन आ जाता है। उस व्यक्ति को सभी फीका (रूखा) कहने लग जाते हैं और उसका जो परिचय दिया जाता है वह भी फीका कह कर करवाया जाता है, उसे दरगाह में प्रवान नहीं किया जाता, दरगाह में से उसे फैंक दिया जाता है क्योंकि उसने फीका बोलकर सैकड़ों प्राणियों के दिलों को दुखाया। दो प्रकार के ही बोल (वचन) हुआ करते हैं यदि मीठी-मीठी बोली में बोला जाये तो सुनने वाले का दिल प्रसन्न हो जाता है, उसके अन्दर अपनत्व और स्नेह पैदा होता है। उसे उत्साह (हिम्मत) मिल जाता है, उसके हृदय में शान्ति आ जाती है, इसके विपरीत कड़वा बोलने से हृदय टूट जाता है। गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है -

नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ।
फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ।
फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ।
फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ॥ पृष्ठ - 473

इकु फिका न गालाइ सभना मै सचा धणी।
हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे॥

पृष्ठ - 1384

(ग) शारीरिक अहिंसा - शारीरिक अहिंसा बहुत ही जरूरी है, शारीरिक तौर पर दूसरे की सहायता करना, उसके कार्य सिद्ध करने के लिये सहयोग देना, दुखों तथा संकटों में से बाहर निकालने के लिये उसे अच्छा रास्ता दिखाना, यदि बीमार हो तो उसकी सेवा करना, ये शारीरिक अहिंसा हुआ करती है। इसे हम सेवा भी कह सकते हैं।

दूसरे के लिये भलाई की लालसा करना, निन्दा, चुगली आदि अवगुण अपने-आप ही दूर हो जाया करते हैं। जब हम दूसरे के भले की कामना करेंगे, हमारा अन्तसकरण स्वच्छ एवं पवित्र होगा और हम परमेश्वर के निकट पहुँच रहे होंगे। मन से, दिल से संसार का भला मांगना अपने मन में से वैर भाव तथा अन्य अनेक बुराईयां निकाल देना, ये योग साधने के लिये बहुत जरूरी यम है।

2 दूसरा यम झूठ मत बोलो - झूठ बोलना एक बहुत बड़ा अवगुण है। दुनियाँ को धोखा देता है और स्वंय अन्दर से फीका पड़ जाता है। झूठ बोलने वाले के हृदय में प्रभु का नाम कभी भी नहीं टिक सकता। उसकी आत्मिक अवस्था नीची हो जाती है और अपने आप को अन्धकार में फैंक देता है। झूठ बोलने वाला परमार्थ के मार्ग पर नहीं चल सकता।

3. इसी तरह से चोरी न करना - चोरी कई प्रकार की हुआ करती है। जैसे किसी ने मेहनत करके बहुत सी वस्तुएं, गहने आदि घर में रखे हुए हों, उन्हें मौका देखकर उठा ले जाना, मायिक पदार्थों की चोरी कहलाती है। दूसरी चोरी किसी की योग्यता, किसी के वचन, किसी के व्याख्यान को अपना बनाकर, दूसरों से प्रशंसा करवाना, यह मन की चोरी हुआ करती है।

4. चौथी रहत 'सत' की हुआ करती है। गुरू घर में 'ऐका नारी जति होइ' का सिद्धान्त है। अपनी स्त्री को छोड़कर, पर स्त्री को मन में बसाना, एकान्त में उसकी बातें सुनना, उसे एकान्त में मिलना, अंगों को देखना, स्पर्श करना, स्वार्थ हित देखना, मन में बुरा दृष्टिकोण रखना आदि जत तोड़ने में सहायक होते हैं, इनसे बचना और पर नारी के साथ बेटी और बहन जैसा व्यवहार करना। इससे मन में काम का विकार पैदा नहीं होता और भजन

करते समय गलत विचार नहीं उठते।

8. पाँचवा धीरज हुआ करता है। मनुष्य पर, सांसारिक यात्रा करते हुए कभी दुख भी आ जाया करता है, कभी सुख भी आ जाता है, कभी बहुत अधिक धन भी आ जाया करता है, कभी बिल्कुल रित हो जाया करता है। ऐसे समय में धैर्य धारण करके चलना, मानसिक उच्चता के लिये बहुत ही लाभदायक हुआ करता है। धैर्यवान मनुष्य, बड़े-बड़े विघ्नों से बच जाया करते हैं। उसे सोचने के लिये समय मिल जाया करता है और जो जल्दी करते हैं तथा विचारों से शून्य हैं, बहुत सी उलझनें उसके गले में पड़ जाती हैं। यदि वह धैर्य पूर्वक विचार करके काम करे तो वह उन विघ्नों से बच जाता है।

एक बड़ी मशहूर कथा है, जिसमें राजा भोज का उल्लेख आता है। वह इस प्रकार है कि राजा भोज पर, किसी अन्य राजा ने आक्रमण कर दिया, वह उसके साथ युद्ध करने के लिये युद्ध क्षेत्र में गया हुआ था पर रात के समय जब घायलों की पूछताछ की जाती थी और युद्ध बन्द हो जाता था तो उस समय वह अपने सेनापतियों को दूसरे दिन की योजना बताकर अपने महलों में वापिस आ जाया करता था। उसकी रानी इन्तज़ार करती, जागती रहती थी।

परन्तु आज ऐसा हुआ कि जब रानी शैय्या कक्ष (Bed Room) में गई तो क्या देखती है कि उसके पलंग पर कोई बहुत गहरी नींद में सोया हुआ है। उसने अपना मुख दोशाले से ढका हुआ है। रानी के मन में विचार आया कि महाराज आज ज्यादा थके हुये हैं, इसलिये मुझे बिना मिले ही मेरे पलंग पर आकर बिराज गये। वह चुप-चाप बिना कुछ खटका किये, मुँह पर कपड़ा डाल कर सो गई और उसे भी जल्दी ही गहरी नींद आ गई। आज राजा किसी कारण वश बहुत लेट हो गया था। वह जब अपने रंग महल में पहुँचा तो यह देखकर हैरान रह गया कि मेरी रानी किसी पर पुरुष के साथ सोई पड़ी है, उसे एकदम क्रोध आया और तलवार खींच ली और मन में इरादा कर लिया कि मैं रानी तथा इस पुरुष के टुकड़े-टुकड़े कर दूँ। उसके साथ उसका वज़ीर भी था। राजा भोज के इरादे को देखते हुए उसने कहा कि, ''हजूर! आप जल्दी मत करो, हम यह पता कर लेते हैं कि वह कौन सोया पड़ा है?'' उस समय रानी भी अचानक जाग पड़ी और क्या देखती है कि राजा भोज तो उसके सामने खड़े हैं और बड़ी हैरान हुई कि वह सो कौन रहा है? राजा भोज ने पूछा, ''महारानी! यह कौन पुरुष है? इतनी बड़ी गुस्ताखी की गई है, मैं इसका योग्य दण्ड दूँगा।'' रानी बहुत डर गई और उसने कहा कि, ''महाराज! जैसे आपको पता नहीं कि यह कौन है, इसी प्रकार मुझे भी पता नहीं कि यह कौन है? मैं तो भ्रम में पड़ गई कि आप जल्दी आ गये होंगे, बहुत अधिक थकावट हो गई होगी, इसलिये सो गये होंगे। मुँह दोशाले के साथ ढका हुआ था। मैंने जगाना उचित न समझा, यह सोचकर कि राजा लोगों को नींद बड़ी कठिनाई से आया करती है। राजा और शेर को जगाना, कठिनाईयाँ, मुसीबतें खड़ी करना होता है।'' उस समय वज़ीर ने भोज को समझाया और कहा कि आप धैर्य रखो।

इसके पश्चात वज़ीर ने स्वंय जाकर सोये हुए नौजवान के मुख से दोशाला हटा दिया। सभी यह देखकर दंग रह गये कि वह राजा भोज का बड़ा राजकुमार था। तब राजकुमार को जगाया गया। उसने अपने माता-पिता को नमस्कार की और इस तरह से सोने का कारण बताते हुए कहा, ''पिता जी! कई दिनों से मैं युद्ध क्षेत्र में था। आज हमने अपने मोर्चे जीत लिये थे और शत्रु को दूर भगा दिया था। मुझे कुछ थोड़ा सा समय मिला और मैं अपने माता-पिता के दर्शन करने और विजय की सूचना सुनाकर आर्शीवाद लेने के लिये, युद्ध भूमि में से सीधा ही इधर चला आया। माता जी अभी काम में व्यस्त थीं। मैं आकर उनके पलंग पर लेट गया। जैसे ही मैं लेटा, मुझे नींद आ गई। अब मैं आपके दर्शन करके बहुत खुश हो गया हूँ। तब वज़ीर ने कहा कि, ''महाराज देखो! धैर्य धारण करने का कितना उच्च फल मिला है? यदि कहीं आप अधैर्य के साथ अस्त्र का वार कर देते तो दोनों ने ही मारे जाना था। बाद में पता चलने पर हमें बहुत पछताना पड़ता। सौ धैर्य एक बहुत बड़ा गुण है।''

ऐसा ही एक जगह और भी बताया गया है कि न्यूटन जो बहुत महान वैज्ञानिक हुआ है, उसने अनेक विषयों पर खोज करके बहुत से जरूरी कागज़ात मेज़ पर रखे हुए थे। थक जाने के फलस्वरूप वह थोड़ी देर टहलने के लिये बाहर बरामदे में आया। थोड़ी देर बाद जब वह पुन: अपने कमरे में लौटा तो क्या देखता है कि उस मेज़ पर पड़े जरूरी कागजातों को आग लग चुकी थी और एक बिल्ली जो उसने रखी हुई थी, बहुत ही सहमी हुई एक कोने में बैठी थी। न्यूटन ने उस बिल्ली को उठा लिया तथा बहुत प्यार किया और कहने लगा कि, ''तुझे पता नहीं कि इन खोज पत्रों को तैयार करने के लिये तेरे मालिक को कितनी रातें जागना पड़ा? कितने घंटे मेहनत करनी पड़ी? पर तुझे क्या पता था कि ये कागज़ कितने जरूरी थे? तू अचानक पहले जैसे मेरे पास आती थी, वैसे ही आई थी, तेरे मन में मेरे लिये प्यार था, उछलने से मोमबतीा गिर गई और कागज़ों को आग लगना स्वाभाविक था। तू घबरा मत, तेरा मालिक फिर मेहनत कर लेगा तथा खोज पत्र तैयार कर लेगा।'' सो इसे धीरज कहा जाता है। दुख-सुख, हानि-लाभ, प्रशंसा-निन्दा में समवृति रखना यह योग

के लिये अति आवश्यक यम गिना जाता है।

6 छठा यम 'क्षमा' हुआ करता है। यह बहुत बड़ा गुण हुआ करता है। बहुत सूझबूझ वाले पुरुष ही क्षमा करने के अधिकारी होते हैं। अन्यथा, आम लोग मामूली सा भी किसी से गलत व्यवहार हो जाता है उसे क्षमा करने की बजाए, उसके साथ वैर विरोध बढ़ा लेते हैं और इस भाव में वृति बिखर जाती है, वैर-भाव अन्दर आने से शरीर रोगी हो जाता है। इसके विपरीत क्षमा करने से मन प्रसन्न रहता है तथा मन में नरोई शक्ति पैदा होती है, जिससे भजन बन्दगी की ऊँची-ऊँची उड़ानें भर सकता है।

ऐसा बताते हैं कि एक बार महाराजा रणजीत सिंघ अपने अंग रक्षकों के साथ जा रहे थे, अचानक एक रोड़ा (पत्थर का टुकड़ा) उनके कन्धे पर आकर लगा। अंग रक्षकों ने इधर-उधर तलाश करके, एक बच्चे को पकड़ लिया जिसने पत्थर मारा था। महाराज ने दूर से देखते हुये कहा कि इस बच्चे को कुछ मत कहो। जब बच्चा पास आ गया तो आपने उससे पूछा, "बेटा! यह पत्थर तूने मारा है?" बच्चा कहने लगा, "महाराज! मैंने आपको पत्थर नहीं मारा था, परन्तु मेरे द्वारा फैंका गया पत्थर आपको आ लगा।" उसने बताया कि वह तो पत्थर, सामने वाली बेरी से बेर झाड़ने के लिये मार रहा था क्योंकि कुछ बेर ऊँची टहनी पर लगे हुए थे। वह बोला, "मैंने ज़ोर से पत्थर फैंका बेर तो झड़ गये परन्तु पत्थर उछल कर बाहर जा गिरी और आपके कन्धे को जा लगी। मैं क्षमा माँगता हूँ, कृपा करके मेरा दोष माफ कर दो।" उस समय महाराजा रणजीत सिंघ ने उस बच्चे को दो गाँव जागीर में देते हुए कहा कि, "बेटा! ईंट देख कर मारा करते हैं। यह देखना जरूरी है कि ईंट कहाँ लगेगी पर क्योंकि तूँ ईंटे मारकर बेरी से बेर ले रहा था। मैं राजा हूँ, मैं तुझे दो गाँव जागीर में देता हूँ, पर फिर किसी को पत्थर मत मारना।" बहुत ही उच्च कोटि का नियम है इनकी जितनी प्रशंसा की जाये उतनी ही कम है, ये बातें चित में एकाग्रता पैदा करती हैं। फ़रमान आता है -

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ।
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ॥

पृष्ठ - 1382

एक बार बाबा फरीद जी अपने मुरीदों के साथ जा रहे थे कि एक अति मूर्ख व्यक्ति के साथ पाला पड़ गया। उसने बाबा फरीद जी के कन्धे पर रखी हुई लोई उतार ली और धक्के-मुक्के भी लगाये, बुरे-भले शब्द भी कहे। फरीद जी ने अपने मुरीदों को कहा कि इसे कुछ मत कहना।

सो आप समवृति धारण करके वहाँ से चले गये। आगे जाकर आप एक जगह पर बैठ गये। आपने दोनों हाथ जोड़े हुए थे और आपके नेत्रों से आँसू बह रहे थे। उस समय मुरीदों ने आपसे पूछा कि, "जब उस व्यक्ति ने आपको धक्के-मुक्के लगाये थे, तब तो आपके नेत्रों से जल नहीं निकला था, अब कैसे आया? अब आप क्या दुआ कर रहे हो?" आपने कहा, "मैं उस पुरुष के लिये दुआ करके अल्लाह के द्वार पर यह माँग कर रहा हूँ कि इस मनुष्य का जन्म व्यर्थ जा रहा है। इसे ज्ञान दे, यह भी भजन बन्दगी करके अपने जीवन का सही लाभ प्राप्त कर सके, इसका भी भला हो जाये।" सो ये जो बुरे का भला करने वाले, नुकसान पहुँचाने वाले को क्षमा करना, यह आम मनुष्य का काम नहीं हुआ करता, ये महान व्यक्तियों के गुण होते हैं।

कृष्ण महाराज जी जो द्वापर युग के क्ष कला सम्पूर्ण अवतार थे। आप प्रभास क्षेत्र तीर्थ पर गये हुए थे। समस्त कुल के व्यक्ति दुर्वासा ऋषि के श्राप के कारण, आपसी गृह क्लेश में मारे जा चुके थे। आप तीर्थ स्थान के साथ ही एक रमणीय स्थान पर वृक्ष के साथ पीठ लगाकर, घुटनों पर चरण रख कर, लेटे हुये थे। एक बधिक ने मृग समझकर बाण मारा, जब वह पास आया तो उसने देखा कि कृष्ण जी की वक्खी पीठ में बाण लगा है। वह ज़ोर-ज़ोर से रोने कुरलाने लगा, कृष्ण महाराज जी ने उसे पास बुला कर दिलासा दिया तथा अवगुण की ओर ध्यान ही न दिया। बुरे का भी भला किया। भाई गुरदास जी लिखते हैं -

जाइ सुता परभास विचि गोडे उते पैर पसारे।
चरण कवल विचि पदमु है झिलमिल झलके वाँगी तारे।
बधकु आइआ भालदा मिरगै जाणि बाणु लै मारे।
दरसन डिठोसु जाइकै करण पलाव करे पुकारे।
गलि विचि लीता क्रिशन जी अवगुणु कीता हरि न चितारे।
करि किरपा संतोखिआ पतित उधारणु बिरदु बीचारे।
भले भले करि संनीअनि बुरिआँ दे हरि काज सवारे।
पाप करेंदे पतित उधारे॥

भाई गुरदास जी, वार 10/23

स्त्र. इसके पश्चात दया का सातवाँ नियम आता है। किसी को दुखी देख कर उसकी सहायता करना, उसका दुख दूर करने के लिये कोशिश करना, किसी को कठिनाईयों तथा मुश्किलातों में फसा देखकर, यदि कुछ भी सहायता नहीं हो सकती तो उसके बारे में वाहिगुरू जी के चरणों में प्रार्थना करना, दया कहलाती है। दया ऐसा गुण है जिस हृदय में दया हो, उस हृदय में धर्म उत्पन्न हो जाया करता है जैसा कि महाराज जी फ़रमान करते हैं -

धौलु धरमु दइआ का पूतु॥ पृष्ठ - 3

एक बार महात्मा बुद्ध जंगल में से जा रहे थे, एक गडरिया

अपनी भेड़ों का रेवड़ लेकर जल्दी-जल्दी जंगल को पार कर रहा था और सूर्य छिपने से पहले-पहले भेड़ों के बाड़े में पहुँच जाना चाहता था। आज उसे कुछ देर हो गई थी और वह भेड़ों को भगाये ले जा रहा था। उनमें से एक लंगड़ा मेमना था, जिसे वह बहुत बुरी तरह मार रहा था क्योंकि वह भेड़ों के साथ बराबर में नहीं चल पा रहा था। टांग पर चोट लगने के कारण वह लंगड़ा कर चल रहा था और गडरिया उसे डण्डे मार-मार कर जबरदस्ती भगा रहा था।

इधर महात्मा बुद्ध भी तेज़ी के साथ इस रेवड़ को देखते जा रहे थे। उन्होंने गडरिये से कहा कि, ''प्यारे! यदि तू आज्ञा दे तो मैं इस लंगड़े मेमने को उठा लूँ क्योंकि इससे भागा नहीं जा रहा।'' आज्ञा प्राप्त करके उन्होंने मेमने को उठा लिया। पहले तो वह मेमना भी काफी डर महसूस कर रहा था, उसका दिल धक-धक कर रहा था और बहुत परेशानी महसूस कर रहा था। पर जब महात्मा बुद्ध ने जोर से दबाकर छाती से लगाया, आँखों पर प्यार भरा हाथ फेरा, मुँह पर, पीठ पर प्यार से सहलाया और प्यार किया तब मेमने का भय बिल्कुल पूरी तरह से दूर हो गया और उसके दिल में महात्मा बुद्ध के लिये प्यार उत्पन्न हो गया और वह मेमना अपना मुँह ऊपर की ओर करके, जीभ निकाल कर, महात्मा बुद्ध को चाटने लगा और गर्दन ऊँची करके महात्मा के मुख के साथ अपनी जीभ लगाने के लिये प्रयास करने लगा। उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखा और प्यार किया। इस प्रकार महात्मा बुद्ध उस गडरिये के साथ उसके बाड़े में आ गये, सारी भेड़ें अन्दर चली गईं। महात्मा बुद्ध ने यह मेमना भी प्यार देकर छोड़ दिया। उसके नेत्र चमक रहे थे, कोई अज़ीब प्रकार की हलचल वह कर रहा था। पूँछ हिला रहा था और एक खास अन्दाज़ में सिर और कान हिला रहा था जिससे पता चलता था कि उसका महात्मा बुद्ध के साथ प्यार हो गया है। जब महात्मा बुद्ध डेरे से बाहर निकले तो मेमना भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। आप उसे उठाकर फिर भेड़ों के झुण्ड में छोड़ आये। पर वह बार-बार महात्मा बुद्ध के पीछे आ जाता था। इस सारे कौतुक को गडरिया देख रहा था। उसके अन्दर अजीब भाव पैदा हो गये और बोला कि, ''महात्मा जी! आप तो कोई महान पुरुष हो, जिसे मेमना भी प्यार कर रहा है पर मैं मनुष्य होता हुआ भी आपका आदर नहीं कर रहा। कृपा करके मेरा हृदय भी पवित्र कर दो, मुझे भी ऐसा गुण बख्श दो, जिससे मैं भी अपना जीवन पवित्र बना सकूँ।

उस समय महात्मा बुद्ध ने उसे बुद्ध धर्म का सन्देश देते हुए कहा कि मनुष्य को आठ गुण धारण करने चाहिये। यह संसार दुखों का घर है। दुखों की जन्मदात्री वासना हुआ करती है। वासनाओं पर नियन्त्रण करके दुखों से छुटकारा पाया जा सकता है। निर्वाण पद की प्राप्ति के लिये कुछ नियम हैं जो मैं तुझे बताता हूँ, इन्हें धारण कर। इनमें सत्य विश्वास, सत्य विचार, सत्य वाक्य, सत्य कर्म, सत्य जीवन, सत्य प्रयत्न, सत्य चिन्तन, सत्य ध्यान, ये आठ रहतें हैं। इन गुणों को धारण कर तथा उपदेश देते हुए कहा कि चार उपदेश अपने हृदय में बसा - (1) इन्द्रियों को काबू करना (2) अपने आपको सचेत करके रखना और अपनी परख करते रहना (3) जिस प्रकार कीचड़, जल से साफ हो जाता है ऐसे ही चित में से विकार और मैल साधन करने से दूर हो जाती है (4) जिनकी बोली और क्रिया, व्यवहार पवित्र है, उनके साथ सारे सुख शरीर की छांया की तरह साथ रहते हैं। सो ऐसे उपदेश देकर महात्मा बुद्ध जी ने उसे बुद्ध धर्म में प्रवेश दे दिया। यह दया का करिश्मा है।

8. आठवाँ यम कोमल हृदय हुआ करता है, किसी को भूल कर भी बुरा न कहना, जितना हो सके शुभ उपदेश देना और दूसरे का भला करना।

1983 की बात है कि एक प्रेमी रतवाड़ा साहिब के निकट एक गाँव का रहने वाला था, वह अभी बालक ही था, वह हमारे पास मोहाली में कोठी पर आया और अपनी व्यथा सुनाने लगा। उसकी बोली से बीजी (बीबी रणजीत कौर जी) ने भांप लिया कि यह प्रेमी भूखा है। जब उससे पूछा तो उसने साफ-साफ कह दिया कि मैंने आज कुछ भी नहीं खाया, भूखा ही हूँ। अपनी हालत बताने लगा तो उन्होंने कहा कि पहले भोजन करके आ, फिर तेरी व्यथा सुनेंगे। भोजन खाने के पश्चात उसने बताया, ''मेरे पिता जी बचपन में ही हमें छोड़कर परलोक चले गये हैं, मैं ही परिवार में बड़ा हूँ, मेरी माँ तथा मेरी दो बहनें हैं। आर्थिक हालत हमारी बहुत बुरी है, पेट भर कर खाना भी बड़ी मुश्किल से मिलता है।'' उसने अति विस्तार के साथ अपनी हालत बताई। तुम्हारे बीजी ने सुनकर कहा कि इस बालक तथा परिवार की ज़रूर मदद करो। इस प्रेमी ने यू. पी. में पूरनपुर के पास अपनी जमीन की बात करते हुए बताया कि मेरे पिता के पास वहाँ जमीन थी जो अब मेरे चाचों के कब्ज़े में है। मैं बेचना चाहता हूँ पर वे बेचने नहीं देते और न ही वे स्वंय लेते हैं। मैंने उसे बेचने का ढंग बता दिया और मेरे वहाँ पर, काफी नजदीकी कुछ व्यक्ति थे जिनके वहाँ फार्म थे, उनकी मदद लेने के लिये भी कहा। उसने एक दो चक्कर फार्म पर लगाए पर कोई सफलता न मिली।

इसी दौरान 1984 के दंगे शुरू हो गये, वह यू. पी. जा रहा था। पूरनपुर के स्टेशन पर उतरते ही, जैसे शिकारी कुते, शिकार पर टूट कर पड़ते हैं, ऐसे ही कुछ दंगई पीछे पड़ गये। वह दौड़कर एक ठाकुर के लकड़ी के स्टाल में घुस गया। मालिक

भला आदमी था और दलेर था। उसने इसे बचाने के लिये बहुत हिम्मत दिखाई। वह भीड़ इधर-उधर बिखर कर किसी और के पीछे पड़ गई। इसे रात काटने के लिये मुसलमानों के मोहल्ले में एक भले आदमी के घर भेज दिया, जहाँ से मौका देखकर, वह अपने फार्म पर चला गया। उसने जमीन का सौदा कर लिया। लेने वाले दमदार आदमी थे, जिनके डर की वज़ह से इसके चाचों ने कोई अड़चन न डाली। यह कुछ पेशगी (बिआना) ले आया। जब बीजी के पास आया तो उन्होंने काफी विचार के बाद इसे दो एकड़ ज़मीन का सौदा करवा दिया और बिआना भी दे दिया। यू. पी. की ज़मीन के पैसे मिलने थे। रजिस्ट्री की तारीख आ गई। इसके पास पैसे नहीं थे। शर्त के अनुसार यदि पैसे नहीं दे पाता तो बिआना ज़ब्त हो जाना था। वह बीजी के पास बहुत रोया और बार-बार कहता कि मैं मारा गया। कई हज़ार रूपये का नुकसान होना था। उस समय तुम्हारे बीजी ने मुझ से बिना पूछे ही, दया के घर में आकर, जीप में बैठकर, उस गाँव में पहुँची, जमीन वालों के सामने इस बच्चे की मजबूरी बताई, पर उन्होंने एक बात न मानी। इतनी देर में रजिस्ट्री का दिन भी आ गया। वह प्रेमी यू. पी. से और पैसे लेकर पहुँचा परन्तु मूल्य देने के लिये अभी भी कई हज़ार रूपये कम पड़ रहे थे। उसका बिआना आज शाम को खत्म हो जाना था। तुम्हारे बीजी, गाँव के सरपंच, नम्बरदार तथा अन्य कई अच्छे-अच्छे प्रेमियों को इकट्ठा करके सभी के सामने, इस बच्चे की गरीबी के बारे में बताया, इस प्रकार बातों-बातों में ही दिन बीत गया। दूसरे दिन सुबह, बिना कुछ खाये पीये, जीप लेकर फिर उसी गाँव में पंचायत तथा भले आदमी इकट्ठे किये। तुम्हारे बीजी ने अपने सिर का दुपट्टा उस पुरुष के चरणों में रख दिया तो अनेक प्रेमियों के दिलों में श्रद्धा पूर्वक आँसू बह चले। बेचने वाला जमीन का मालिक भी पिघल गया और बीजी ने अपनी ओर से कई हज़ार रूपये देकर रजिस्ट्री करवा दी। मुझे जब पता चला, तो मेरे मन में भी इस दया के कार्य के लिये कद्र पैदा हुई। पर मैं खुश भी हुआ कि तुम्हारे बीजी ने इस बच्चे को आर्थिक संकट से बचा लिया। यू. पी. के पैसे उसे काफी समय बाद मिले, हमारे पैसे सिंघों ने उससे वसूल कर लिये।

यह दया का कार्य सहज स्वभाव ही हुआ क्योंकि वह प्रेमी इतने संकट में से बचा लिया, पर लौट कर उसके दर्शन आज तक नहीं हुए, बेशक वह गुरूद्वारा साहिब के सामने से कई बार गुज़रता होगा। तुम्हारे बीजी ने कभी भी उसके इस रूखे व्यवहार की कोई शिकायत नहीं की। उनका सिद्धान्त, 'नेकी कर दरिया में डाल' संसार की रीत है, 'नै लंघी खुआजा विसरिआ' भाव मतलब निकल जाने के बाद मुँह फेर लेना। किसी बदले की भावना से रहित, स्वाभाविक ही सहायता करना नेक कर्म है और कोमल हृदय की प्रत्यक्ष निशानी है।

9. नौवां भोजन खाने की मर्यादा हुआ करती है। भूख से चौथाई हिस्सा कम खाना। सादा और सतोगुणी भोजन करना जो पौष्टिक हो पर गैस, बाय, कफ जैसे विघ्न शरीर में न आने दें। माँस, मछली, अण्डे आदि से परहेज़ करना।

10. इसी प्रकार दसवां यम शरीर की पवित्रता हुआ करती है। नियम अनुसार स्नान करना और बोलने की पवित्रता महापुरुषों के वचन पढ़ने से, मन की पवित्रता, मन से ईर्ष्या द्वैत भाव निकाल कर पवित्र रहना। बुद्धि की पवित्रता, सत्य शास्त्र, महापुरुषों के उपदेश पढ़ने से हुआ करती है।

ये ऊपर बताये गये ❡ यम हैं जो योग की प्राप्ति के लिये बहुत ही जरूरी हैं। इसके अतिरिक्त ❡ नेम हुआ करते हैं।

1. तप - तप तीन प्रकार का होता है।

(क) तामसी तप - जलधारे करना, अग्नि तप करना, भूखे रहना, खड़े रहना, बाजू ऊपर उठाकर तप करना तथा उलटा लटकना और इन तपों को करने के लिये कष्ट तथा मेहनत बहुत करनी पड़ती है, परन्तु फल बहुत कम मिलता है। ऐसे समझ लो कि एक तूड़ी (भूसा) का व्यापार करने वाला है, बहुत मेहनत करके भूसे को दूर के खेतों में से ट्रकों द्वारा बाहर निकाल कर, वाहन पर लाद कर लाता है परन्तु बेचने पर मुनाफा बहुत कम मिलता है, मेहनत बहुत करनी पड़ती है। इसके मुकाबले में कोई हीरों का व्यापार करता है, वह आराम से अपनी दुकान पर बैठा रहता है, कोई अच्छा ग्राहक आ जाता है तो एक ही हीरा बेचकर उसे बहुत लाभ हो जाता है। इस प्रकार मेहनत भी बहुत करना और फल भी बहुत कम मिले, इसे तामसी तप कहा जाता है।

(ख) राजसी तप - कुकर्मों से अपने आपको बचाकर रखना, बुरे विचार आते ही उन्हें रोकना, मन को गलत कामों की ओर प्रवृत होने से रोकना और शरीर द्वारा सेवा करना, यह राजसी तप हुआ करता है।

(ग) सान्तकी तप - यह सबसे श्रेष्ठ तप है, चित की पाँच प्रकार की वृतियाँ, प्रमाण, विपरजा, निन्द्रा, विकल्प तथा स्मृति हैं, इन वृतियों पर नियन्त्रण करना और भजन करते समय मन को किसी ओर न भागने देना, यह सांतकी तप हुआ करता है, इसके बेअन्त फल हुआ करते हैं।

2 दूसरा नेम सन्तोष कहलाता है, इसमें वाहिगुरू जी की रज़ा पर पूरी तरह से भरोसा रखना, मेहनत करके जो कुछ भी मिलता है उसी को पाकर सन्तुष्ट रहना, इसे सन्तोष कहा जाता है। इससे ऊँचा सन्तोष अपनी वासनाओं को काबू करने का हुआ करता है, नेत्रों द्वारा किसी के रूप को मन्द भावना से न देखना, कानों से

किसी की निन्दा न सुनना, रसना द्वारा झूठ न बोलना, शरीर द्वारा कोई बुरा काम न करना। तीसरा सन्तोष, इन्द्रियों को बुरे कर्मों से रोकना, मन को बुरे विचारों से, बुद्धि को घटिया सोच से, चित को बुरी चितवनी से रोक कर प्रभु प्यार में रखना, सन्तोष कहलाता है।

3. तीसरा नेम आस्तिक भाव हुआ करता है। गुरू की बाणी पर पूर्ण विश्वास रखना और नास्तिक भाव मन में पैदा न होने देना। वाहिगुरू जी को संसार का कर्ता समझकर हाज़िर नाज़िर देखना, उससे प्यार करना यह आस्तिक नेम हुआ करता है।

4 चौथा नेम दान है, दान करने में भी राजसी, तामसी तथा सान्तकी तीन भेद हुआ करते हैं।

5 पाँचवा नेम पूजा कहलाता है। अर्न्तात्मा में गुरू का ध्यान रखकर पूजा करना, जिसे अन्तरंग उपासना भी कहते हैं।

एक बार कबीर साहिब अपने गुरूदेव से मिलने गये, वह अन्तरीवी उपासना कर रहे थे। कबीर साहिब ने उनकी अन्तरीवी उपासना को देख लिया, उनके गुरू परेशान थे कि उनकी उपासना में आज विघ्न पड़ जायेगा उन्होंने अपने इष्ट देव के शीश पर मुकुट रख दिया था परन्तु गले में माला डालनी भूल गये। अब यदि मुकुट उतारते हैं तो बे-अदबी होती है, यदि माला गले में नहीं डालते तो उपासना अधूरी रह जाती है। वह इसी बात के लिये परेशान हैं, कोई हल नहीं समझ में आ रहा था। उस समय कबीर साहिब ने बाहर से ही आवाज़ लगाई, ''गुरूदेव! परेशान होने की कोई बात नहीं है, आप ने माला को जो गाँठ लगाई हुई है, उसे खोल दो, गले में डालने के बाद गाँठ फिर लगा दो।'' रामानन्द जी ने ऐसा ही किया। इसे अन्तरीवीं पूजा कहा जाता है।

6 छठा नेम नितनेम से पाठ करना - सत्य वचन पढ़ना तथा उस सिद्धान्त को हृदय में बसाना, इसे पाठ कहते हैं।

7. सातवाँ नेम अपने आपको दब्भ रहित रखना कई बार साधक अपनी महिमा करवाने के लिये पाखण्ड करते हैं। पाखण्ड करने से बहुत भारी दोष लगता है और पाखंडी आत्मिक अवस्था की उच्च अवस्थाओं से नीचे गिर जाता है। गुरू दशमेश पिता जी फ़रमान करते हैं -

भेख दिखाइओ जगत को लोगन को वस कीन।
अंत काल काटी कटिओ बास नरक मो लीन॥

8. आठवाँ सान्तकी व्रत रखना पड़ता है जिसमें मन को नीचा रखना, मीठा बोलना, अपने आपको कुछ भी न समझ कर दूसरों के चरणों का दास समझना।

9. नौवां अबोल नेम हुआ करता है। पाठ करते समय, भजन करते समय बातें न करना और मन को स्थिर करके बाणी पढ़ना, सिमरण करना।

क. दसवाँ भूखे को अन्न जल देना, यह होम कहलाता है। ये यम और नेम जो ऊपर बताए गये हैं, ये भजन करने के लिए एक Base (आधार) हैं। जिसके चित में ये गुण नहीं समाये, वह अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच सकता।

योग का तीसरा अंग आसन हुआ करता है। भजन करते समय ऐसा स्थान देखना जहाँ शोर शराबा कम हो, जहाँ न तो बहुत अधिक सर्दी हो और न ही गर्मी से दम घुटता हो। चौगिर्दा साफ सुथरा हो। मक्खयाँ, मच्छर गन्दे स्थानों से उड़कर साधक को तंग करती हैं। बदबूदार नमी वाला स्थान न हो। ऐसा स्वच्छ स्थान ढूँढ कर, आसन बिछाकर, रीढ़ की हड्डी सीधी करके बैठना और शरीर के सभी अंगों को तनाव रहित करना और किसी प्रकार का भी तनाव मन में न रहे और सारा शरीर सिर की चोटी से लेकर पैर के अँगूठे तक, एक-एक अंग की तरफ ध्यान करते हुए ढीला छोड़ना, पर रीढ़ की हड्डी सीधी रखना। इस प्रकार आलस्य दूर करके मन्त्र का जाप करना। इसमें ऐसा आसन लगाना कि खून का दबाव किसी अंग के दबने से कम नहीं होना चाहिये। इसके लिये पदम आसन या सिद्ध-आसन अच्छे बताये जाते हैं। जब भी भजन करने बैठना हो तो पूरी तरह से जम कर बैठना चाहिए। ऐसा नहीं करना चाहिये कि कानों में अंगुली डालते रहो या सिर पर हाथ फेरते रहो, कभी एक घुटना हटा लिया तो कभी दूसरा खड़ा कर लिया। यह स्थिर आसन नहीं हुआ करता। पूरी तरह से आसन जमाकर ऐसे ढंग से बैठा जाये और शबद का जाप करते समय शरीर को भूल जाये और सारा ध्यान गुरूमन्त्र में ही लगा दे।

भजन करने के लिये स्वच्छ एवं पवित्र स्थान होना चाहिये जहाँ पर स्थिर होकर, काफी समय तक बैठने में सहायता मिलती हो स्थान बिल्कुल पवित्र होना चाहिये, कोई कंकर, पत्थर रेत तथा मिट्टी आदि उस स्थान पर न हो, आग आदि से भी दूर हो, पानी के किनारे या सुन्दर बेल बूटों के आस पास ऐसा स्थान हो, नेत्रों को सुन्दर लगने वाला स्थान हो, जहाँ एकान्त हो, हवा के तेज झौंके न लगते हों। जब अब्यास करते समय अब्यास का समय और प्रभाव बढ़ता है तो बहुत कुछ दिखाई देना शुरू हो जाता है। जैसे पहले धुन्ध दिखाई देती है, फिर धुआं, सूरज, वायु, अग्नि, जुगनूं, बिजली, बिल्लौर, चन्द्रमा तथा तारे, निर्मल आकाश में चमकते हुए दिखाई दिया करते हैं। सभी रूप दिखाई देकर शान्त हो जाते हैं। इनके ऊपर से निकलने के पश्चात ब्रह्म का प्रकाश होता है। ऐसा आचार्यों का मत है कि जब पृथ्वी, जल, तेज वायु तथा आकाश प्रकट हो जाते हैं तो उस समय पाँचों तत्व पर विजय प्राप्त हो जाती है। फिर योगी न तो किसी रोग में फँसता

है, न ही बुढ़ापा महसूस करता है, न ही उसे दु:ख महसूस होता है क्योंकि उसने अपने शरीर को शुद्ध कर लिया होता है। योग के बल से शरीर हल्का हो जाता है, नीरोग हो जाता है। विषयों की लालसा कम हो जाती है, कड़वाहटपन दूर हो जाती है, अपने शरीर की गन्ध शुद्ध होती है, मलमूत्र तंग नहीं करता फिर उसे आत्मा के शुद्ध स्वरूप का आत्म साक्षात्कार हो जाता है। जिस प्रकार कोई रतन मिट्टी के साथ लथ-पथ हुआ पड़ा हो, जब उसे धोया जाता है तो वह तेज़मयी होकर चमकता है, इसी प्रकार आत्म साक्षात्कार होने से देही हल्की-हल्की हो जाती है। इस अवस्था की प्राप्ति के लिये आसन, अति पवित्र स्थान पर लगाना चाहिए क्योंकि काफी समय तक साधना करनी पड़ती है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये साधक अकेला, एकान्त स्थान पर बैठकर एकाग्रचितहोकर, आशा तथा अन्देशा को त्याग कर निरंतर जीव आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़े। स्थान न तो अधिक ऊँचा होना चाहिये, न ही नीचा होना चाहिये, सुन्दर वस्त्र नीचे बिछाकर, एकाग्र चित होकर बैठना चाहिये। इन्द्रियों तथा चित को वश में करके आत्म शुद्धि के लिये अब्यास करे। सिर, गर्दन तथा धड़ एक ही सीध में अचल रखते हुए, स्थिर रखते हुए, इधर उधर न देखते हुए, नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि टिकाए और शान्त चित, निरभउ, ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित, मन को संयम में रखकर योग करे।

चौथा अंग प्राणायाम है। शरीर में बेअन्त नाड़ियाँ हैं, एक अनुमान के अनुसार स्त्रख करोड़, स्त्रख लाख, स्त्रख हज़ार ख शरीर में रक्त पहुँचाने के लिये अति सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं, जिनमें से तीन नाड़ियाँ जो रीढ़ की हड्डी के इर्द-गिर्द हैं जो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इड़ा, पिंगला तथा सुखमना है। सुखमना अन्दर वाली नाड़ी है। इड़ा तथा पिंगला नाड़ी को सूरज तथा चन्द्र नाड़ी भी कहा जाता है। प्राणायाम अनेक प्रकार के होते हैं। छोटा प्राणायाम भी है और दीर्घ काल का प्राणायाम भी है, इसके अनेक भेद हैं यहाँ मुख्य कर्म है रेचक, पूरक, कुम्भक द्वारा प्राणों को दसवें द्वार में स्थित करना।

पाँचवा अंग प्रतिहार है इसके अनुसार भजन करने के लिये एकान्त स्थान देखना तथा अपनी इन्द्रियों पर काबू पाना, मन को विकारों से रोकना तथा बार-बार रोक कर उन्हें भजन की ओर प्रेरित करना।

छठा नियम धारना है इसके अनुसार गुरू की मूरत पर ध्यान केन्द्रित करना होता है तथा मन को रोक कर बार-बार उस पर केन्द्रित करना। क्ख सैकिण्ड यदि मन टिक जाये तो धारना के मण्डल में प्रवेश हो जाता है, यदि अढ़ाई मिनट टिक जाये तो एक धारना होती है। ख घारनाओं का एक ध्यान होता है, म ध्यानों की एक छोटी समाधि होती है।

सातवाँ अंग धिआन होता है, अपने ध्येय पर कम से कम आधा घन्टा ध्यान लगाना है, इसे ध्यान कहा जाता है।

आठवाँ अंग समाधि होता है, समाधि तीन प्रकार की होती है। एक को सा विकल्प समाधि कहा जाता है। जिसमें ध्याता-ध्यान-ध्येय का ज्ञान रहता है। दूसरी निर्विकल्प समाधि होती है जिसमें ब्रह्मभाव के बिना और कोई चीज़ ध्यान में नहीं रहती जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है इसे राजयोग कहा जाता है।

राजयोग में प्राणायाम के बल द्वारा प्राण सुखमना नाड़ी में प्रवेश किये जाते हैं। सुखमना नाड़ी सारे शरीर में सबसे श्रेष्ठ नाड़ी है। जो रीढ़ की हड्डी जिसे मेरूदण्ड कहते हैं, में से होती हुई ऊपर की ओर चली गई है। सुखमना नाड़ी के अन्दर एक बज्र नाड़ी है, बज्र के अन्दर चितरनी है, चितरनी के मध्य में ब्रह्म नाड़ी है। ये सारी नाड़ियाँ मकड़ी के जाले की तरह अति सूक्ष्म हैं, जिनका ज्ञान, योग साधना करने वालों को हुआ करता है। ये नाड़ियाँ सतोगुणी प्रधान प्रकाशमयी तथा अदभुत शक्ति वाली हुआ करती हैं। ये ही सूक्ष्म शरीर तथा सूक्ष्म प्राण के स्थान हैं। इनमें अति सूक्ष्म शक्तियों के केन्द्र हैं, जिनमें अन्य अनेक सूक्ष्म नाड़ियाँ आकर मिलती हैं। इन शक्तियों के केन्द्र को पदम तथा कमल कहते हैं। आम बोली में इन्हें चक्र भी कहते हैं। ये संख्या में सात हैं। (1) मूलाधार (2) स्वाधिष्ठान (3) मणिपूरक (4) अनाहत (5) विशुद्ध (6) आज्ञा और (7) सहंसरार कमल है। यह चक्र पाँच तत्वों, पाँच तन मात्राओं, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेद्रियों, पाँच प्राणों, अन्तसकरण, समस्त वर्ण, स्वरों तथा सात लोकों के मण्डल हैं, अनेक प्रकार के प्रकाश इसमें होते हैं। साधारण अवस्था में यह चक्र बिना खिले कमल की तरह उलटे मुख किये हुए हैं, ध्यान द्वारा शक्ति प्राप्त करके इनमें हरकत आती है तथा ये फिर सीधे ऊर्ध्व मुख हो जाते हैं और फिर इनमें अलौकिक शक्तियों का प्रकाश होता है, हर एक चक्र में नाना प्रकार की शक्तियाँ हैं। तान्त्रिक तथा हठ योग के ग्रन्थों में इनका वर्णन है। पातंजलि योग दर्शन के मुताबिक शौक रखने वाले जिज्ञासुओं की जानकारी के लिये विवरण दिया जा रहा है।

मूलाधार चक्र - Pelvic Plexus के स्थूल रूप से इसके सूक्ष्म स्वरूप का संकेत किया जा सकता है। गुदा मूल में दो अंगुलियाँ ऊपर तथा उपस्थ मूल से दो अंगुलियाँ नीचे हैं। रक्त रंग प्रकाश से उज्जवल चार पखुडियों वाले कमल की तरह है। चारों पखुड़ियाँ के ऊपर वं. शं. खं. सं. चार अक्षर हैं। चार कोनों वाला स्वर्ण रंग का पृथ्वी तत्व का मुक्य स्थान है। तत्व बीज 'लं' है। ऐरावत हाथी की तरह सामने की ओर गति है, गन्ध गुण है, नीचे की ओर चलने वाले अपान वायु का मुक्य स्थान है। गन्ध

तनमात्रा से उत्पन्न होने वाली सूंघने की शक्ति नासिका का स्थान है। पृथ्वी तत्व से उत्पन्न होने वाली मल त्याग शक्ति गुदा का स्थान है। भू-लोक है। ऐरावत हाथी जिस पर इन्द्र बिराजमान है। चतुर्भुज ब्रह्मा अपनी शक्ति चतुर्भुज डाकिनी के साथ, चार कोनें वाला, स्वर्ण रंग यन्त्र है। चक्र पर ध्यान का फल - निरोगता, आनन्द चित, वाक्य, काव्य (कविता) प्रबन्ध दक्षता (लिखने की शक्ति)। इस चक्र के नीचे त्रिकोण यन्त्र जैसा एक सूक्ष्म यौनि मण्डल है, जिसके मध्य कोण से सुखमना (सरस्वती) नाड़ी, दक्षिणी कोण से पिंगला (यमुना)नाड़ी तथा वाम कोण से ईड़ा (गंगा) नाड़ी निकलती है। इसलिये इसे मुक्त त्रिवेणी भी कहते हैं।

तान्त्रिक ग्रन्थों में बताया गया है कि इस यौनि मण्डल के मध्य में तेज़मयी रक्त वर्ण कली बीज रूप कन्दर्प नाम का स्थिर वायु विद्यमान है, जिसके मध्य में ब्रह्मनाड़ी के मुख में स्वयंभू लिंग है। इसमें कुण्डलनी शक्ति साढ़े तीन कुण्डलियों में लिपटी हुई शंख के आकार की तरह है। कुण्डलनी शक्ति का वर्णन आगे किया जायेगा। मूल शक्ति अर्थात कुण्डलनी शक्ति का आधार होने के कारण इस चक्र को मूलाधार चक्र कहते हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र Hypogastric Plexus के स्थूल स्वरूप से इसके सूक्ष्म स्वरूप का संकेत किया जा सकता है। मूलाधार चक्र से दो अंगुलियाँ ऊपर पेडू के पास इस चक्र का स्थान है। सिन्दूरी रंग के प्रकाश से प्रकाशित ६ पंखड़ियों वाले कमल के समान है। छह पखुड़ियों पर बं, भं, मं, यं, रं, लं, छह अक्षर हैं। सफेद रंग, अर्धचन्द्र, आकार वाले जल तत्व का मुक्य स्थान है। तत्व बीज 'बं' है। जिस प्रकार मकर (मगरमच्छ) लम्बी डुबकी लगाता है, इसी प्रकार इस तत्व की नीचे की ओर लम्बी गति है, गुण रस है। सारे शरीर में व्यापक होकर गति करने वाले बिआन (आवागमन वाले) वायु का मुख्य स्थान है। रस तनमात्रा से उत्पन्न स्वाद लेने की शक्ति रसना का स्थान है। जल तत्व से उत्पन्न मूल त्याग शक्ति उपस्थि का स्थान है। भुव लोक है, मकर जिस पर वरुण बिराजमान है। विष्णु अपनी चतुर्भुजा राकिनी शक्ति के साथ बिराजमान है। अर्ध चन्द्र आकार श्वेत रंग है। तान्त्रिक ग्रन्थों में, इस चक्र में ध्यान का फल सिरजना, पालना, खत्म कर देने की समर्थता तथा जीभ पर सरस्वती देवी का होना, बताया जाता है।

मणिपूरक चक्र - Epigastric Plexus तथा Solar Plexus के स्थूल स्वरूप द्वारा इसके सूक्ष्म स्वरूप का संकेत किया जा सकता है। स्थान नाभि मूल है, नीले रंग के प्रकाश से प्रकाशित दस पंखुड़ियों वाले कमल के समान है। दस पंखुड़ियों पर डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं ये दस अक्षर हैं। इन दस वर्णों की ध्वनियाँ निकलती हैं। रक्त रंग त्रिकोण आकार वाले अग्नि तत्व का मुख्य स्थान है। तत्व बीज 'रं' है। जिस प्रकार मेख (मैंढक) ऊपर को उछल कर चलता है, इसी प्रकार इस तत्व की गति ऊपर को है। गुण रूप है। खान-पान के रस को सम्पूर्ण शरीर में सव-सव स्थान पर समान रूप से पहुँचाने वाले समान वायु का मुख्य स्थान है। रूप तन मात्रा से उत्पन्न देखने की शक्ति चक्षु स्थान है। अग्नि तत्व से उत्पन्न चलने की शक्ति पैर का स्थान है। सव लोक है। मेख जिसके ऊपर अग्नि देवता विराजमान है। रूद्र अपनी चतुर्भुजा शक्ति लाकिनी के साथ, यन्त्र त्रिकोण रक्त रंग का है। विभूति पद में इस चक्र पर ध्यान का फल शरीर व्यूह (शरीर चक्र) का ज्ञान बताया है। इसमें ध्यान करने से अजीर्ण आदि रोग दूर हो जाते हैं।

अनाहत चक्र - इसके सूक्ष्म स्वरूप का सकेंतक cardiac Plexus का स्थूल स्वरूप है। हृदय के पास, सिन्दूरी रंग के प्रकाश से उज्जवल 12 पंखुडियों वाला कमल है। 2 पंखुड़ियों पर कं, खं, गं, घं, डं, चं, छं, जं, झं, वं, टं, ठं ये 12 अक्षर हैं। धुम्र रंग (धुएं जैसा रोग) षटकोणाकार (6कोनों वाला) वायु तत्व का मुख्य स्थान है। तत्व बीज 'यं' है। जिस प्रकार मृग तिरछा-तिरछा चलता है, इसी प्रकार इस तत्व की गति तिरछी है। गुण स्पर्श है। मुख तथा नासिका से गति करने वाली प्राण वायु का मुख्य स्थान है। स्पर्श तन मात्रा से उत्पन्न स्पर्श की शक्ति त्वचा का केन्द्र है। वायु तत्व से उत्पन्न पकड़ने की शक्ति हाथ के समान है। मह-लोक है, अन्तसकरण का मुख्य स्थान है। बीज का वाहन मृग है। ईशान रूद्र अपनी त्रिनेत्र चतुर्भुजा शक्ति काकिनी के साथ है। षटकोण (6) आकार धुम्र रंग है। वाक्पतित्व (बोलने की शक्ति) कवित्व (कविता) शक्ति का लाभ, जितेन्द्रिय (इन्द्रियों को जीतना) आदि तात्विक ग्रन्थों में बताया गया है। शिव सार तन्त्र में कहा है कि इस स्थान से उत्पन्न होने वाली अनाहत ध्वनि ही सदा शिव है तथा त्रिगुणमयी औंकार इसी स्थान से व्यक्त होता है, जिसे शब्द ब्रह्म कहते हैं। वही साक्षात सदा शिव है। वही शब्द अनाहत चक्र में है। कहीं-कहीं इस चक्र के निकट आठ दल वाला एक 'निम्न मनस चक्र' Lower mind Plexus बताया गया है। स्त्रियों तथा भक्तिभाव वालों को ध्यान करने के लिये अनाहत चक्र अच्छा स्थान है।

विशुद्ध चक्र - इसका संकेतक स्थूल स्वरूप Carotid Plexus है। कंठ दोष है। धूम्र तथा धुन्धले रंग के प्रकाश से उज्जवल १६ पंखुड़ियों वाले कमल जैसा है। सोलह पंखुड़ियों पर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, रि, री, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं आं अक्षर है। चित्र विचित्र (रंग बिरंगे) आकार तथा अनेक रंगों

वाले तथा पूरे चन्द्रमां की तरह गोलाकार आकाश तत्व का मुख्य स्थान है। तत्व बीज 'हं' है। जैसे हाथी मस्त चाल से घूम-घूम कर चलता है, इसी प्रकार इस तत्व की घुमाव वाली गति है। शब्द गुण है। ऊपर की गति के लिये शरीर में प्रयोग होने वाली उदान वायु का मुख्य स्थान है। शब्द तन मात्रा से उत्पन्न श्रवण शक्ति स्त्रोत का स्थान है। आकाश तत्व से उत्पन्न वाक शक्ति, बाणी का स्थान है। जन लोक है। हस्ती जिस पर प्रकाश देवता आरूढ़ है। पंच मुख वाले सदाशिव अपनी शक्ति चतुर्भुजा शाकिनी के साथ है। पूरे चन्द्रमा के सदृश्य गोलाकार आकाश मण्डल है। कवि, महाज्ञानी, शान्त चित, नीरोग, शोकहीन तथा दीर्घ जीवी होना बताया गया है। इसका 'विशुद्ध' नाम रखने का यह कारण बताया गया है कि इस स्थान पर मन की स्थिति होने से मन आकाश के समान विशुद्ध (निर्मल) हो जाता है।

आज्ञा चक्र - इसका संकेतक Medula Plexus का स्थूल रूप है। दोनों भौहों के मध्य त्रिकुटी के अन्दर है। सफेद प्रकाश सहित दो पंखुड़ियों वाले कमल के समान है। दोनों पंखुड़ियों पर खय-गय अक्षर हैं। इन दोनों पंखुड़ियों के संकेतक पाश्चात्य विज्ञान के Pineal gland तथा Pituitary glands समझना चाहिए, जिन्होंने मनुष्य के मसत्क के अन्दर दो निरर्थक, रेत से ढके हुए मांस पिन्ड कहा गया है। ये दोनों मांस पिन्ड अपने स्थान पर रहते हुए आज्ञा चक्र के ऊर्ध मुख होकर विकसित होने पर उससे दिव्य शक्ति को प्राप्त होते हैं। लिंग अर्थात लिंग आकार महितत्व है। तत्व बीज 'ओइम' है, तत्व बीज गति नाद है, तप लोक है। नाग जिस पर लिंग देवता है। ज्ञानदाता शिव अपने चार हाथों वाली, छह मुख वाली हाकिनी शक्ति के साथ बिराजमान है। लिंगाकार है। भिन्न-भिन्न चक्रों के ध्यान द्वारा जो फल प्राप्त होते हैं, वे सभी एक बार इस चक्र पर ध्यान करने से प्राप्त हो जाते हैं। जिस स्थान पर प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने से सम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता होती है। मूलाधार से इड़ा, पिंगला तथा सुखमना अलग-अलग प्रवाहित होकर इस स्थान पर मिलती है। इसलिए इसे युक्त त्रिवेणी भी कहते हैं।

इड़ा को गंगा तथा पिंगला को यमुना तथा इन दोनों के मध्य में जाने वाली नाड़ी सुखमना को सरस्वती कहते हैं। इस त्रिवेणी का जहाँ संगम है, उसे तीर्थ राज कहते हैं -

उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अंम्रितसरि नावै॥

पृष्ठ - फ्भ

इसमें स्नान करके सारे पापों से मुक्त हो जाते हैं। आज्ञा चक्र ही सर्व शास्त्र सम्मत हृदय है। स्थूल बुद्धि वाले ही अन्य स्थूल स्थान को हृदय कहते हैं। यह आज्ञा चक्र शिव नेत्र (Organ of Clairvoyance) दिव्य दृष्टि का यन्त्र है। प्राणतोषणी तन्त्र में एक म्ब दल वाले ललना संज्ञयक चक्र के तालु में तथा एक शत (सौ) दल वाले गुरू चक्र की अवस्थिति (अनुपस्थति) ब्रह्मरन्ध्र में बताई है और किसी किसी ने सोम चक्र (गुरू चक्र) मानस चक्र, ललाट चक्र आदि भी वर्णन किया है, परन्तु ये सभी सात चक्रों के ही अर्न्तगत है। क्रियात्मक रूप में इसकी अधिक उपयोगिता नहीं है।

सहंसरार तथा शून्य चक्र - इसके संकेतक स्थूल रूप Cerebral Plexus है। तालु के ऊपर मस्तक में, ब्रह्मरन्ध्र से ऊपर सभी शक्तियों का केन्द्र है। नाना रंग के प्रकाश सहित सहंसर (एक हज़ार) पंखुड़ियों वाले कमल जैसी है। पंखुड़ियों पर 'अ' से लेकर 'कश्' तक सभी स्वर तथा वर्ण हैं। तत्व अतीत है। विसर्ग है, तत्व बीज गति बिन्दु है। सत्यम लोक है। पारब्रह्म अपनी महाशक्ति के साथ स्थित है। पूर्ण चन्द्र शुभ्र (सफेद) वर्ण है। इस का फल अमर होना तथा मुक्ति है। इस स्थान पर प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने पर सर्व वृतियाँ के निरोध रूप असम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता प्राप्त होती है। कुछ विद्वानों तथा अभ्यासियों का विचार है कि उपनिषदों में जो अंगुष्ठ मात्र हृदय पुरुष का स्थान बताया गया है, यह ब्रह्म रन्ध्र ही है, जिसके ऊपर सहंसरार चक्र है क्योंकि यही अंगुष्ठान मात्र आकाश वाला है। यही चित का स्थान है, जिसमें आत्मा के ज्ञान का प्रकाश तथा प्रतिबिम्ब पड़ रहा है तथा इसी स्थान पर प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने पर असम्प्रज्ञात समाधि अर्थात सर्व वृति निरोध होता है।

शरीर में जीवात्मा का कौन सा स्थान है? इस सम्बन्ध में कई बार प्रश्न पूछे गये हैं। वास्तव में आत्मा के ज्ञान का प्रकाश चित पर पड़ रहा है। चित ही कारण शरीर है। इस कारण शरीर के सम्बन्ध के साथ आत्मा की संज्ञा जीव आत्मा होती है। कारण शरीर सूक्ष्म शरीर में व्याप्त हो गया है तथा सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर में। इस प्रकार जीव आत्मा सारे ही शरीर में व्याप्त हो रही है। फिर भी कार्य भेद द्वारा इसके कई स्थान बताये जा सकते हैं।

स्वपन अवस्था में जीव आत्मा का स्थान हृदय देश बताया गया है क्योंकि हृदय शरीर का मुख्य स्थान है। यहीं से ही सारे शरीर में नाड़ियाँ जा रही हैं। सारे शरीर का आन्तरिक कार्य यहीं से ही चल रहा है। हृदय की गति रूक जाने से शरीर के सारे काम बन्द हो जाते हैं, इसलिये स्वपन अवस्था में जीव आत्मा का स्थान हृदय कहा जा सकता है जैसा कि उपनिषदों में बताया गया है -

जब यह पुरुष जिसका स्वभाव विज्ञानी है, गहरी नींद सोया हुआ होता है तो यह, इन इन्द्रियों के विज्ञान द्वारा, विज्ञान को लेकर जो हृदय के अन्दर आकाश है, वहाँ आराम करता है।

स्वपन अवस्था में जीव का स्थान कंठ बताया गया है क्योंकि जाग्रत अवस्था में जो पदार्थ देखे, सुने या भोगे जाते हैं, उनके संस्कार, एक बाल के ग्याहरवें भाग के समान बारीक, कंठ में स्थित एक हिता नामक नाड़ी में रहना बताया गया है इसलिये अनुभूत पदार्थ तथा उनका ज्ञान स्वपन अवस्था में कंठ में होता है।

जाग्रत अवस्था में जीव आत्मा बाहरी इन्द्रियों द्वारा बाहर के विषयों को देखती है। बाहरी इन्द्रियों में नेत्र प्रधान है, इसलिये जाग्रत में जीव आत्मा की स्थिति उपनिषद में नेत्र में बताई गई है। यह जो आंख में पुरुष दिखाई देता है, यह आत्मा है। सम्प्रज्ञात समाधि में जीव आत्मा का स्थान आज्ञा चक्र कहा जा सकता है क्योंकि यही दिव्य दृष्टि का स्थान है। इसे ही दिव्य नेत्र तथा शिवनेत्र भी कहते हैं।

इसी प्रकार असम्प्रज्ञात समाधि में जीव आत्मा का स्थान ब्रह्मरन्ध्र है क्योंकि इस स्थान पर प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने पर असम्प्रज्ञात समाधि अर्थात सर्व वृति विरोध होता है।

कुण्डलनी शक्ति - पाठकों को सुखमना नाड़ी के महत्व, उसके भीतर तीन शक्तिशाली नाड़ियों के केन्द्रों का वर्णन कर देने से उसके साथ जान-पहचान हो गई होगी। वास्तव में ब्रह्मण्ड में जितनी शक्तियाँ वर्तमान हैं, उन सभी को ईश्वर ने शरीर रूपी पिण्ड के इस भाग में एकत्रित कर दिया है -

जो ब्रहमंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै ॥

पृष्ठ - 695

परन्तु सुखमना नाड़ी का मुख त्रिकोण यौनि मण्डल के मध्य स्थान पर, जहाँ यह मेरूदण्ड के अन्दर होती हुई ऊपर को चलती है, साधारण अवस्था में बन्द रहता है। इसी कारण इसकी शक्ति अविकसित रहती है और प्राण शक्ति केवल इड़ा तथा पिंगला द्वारा जो इस त्रिकोण मण्डल के वाम तथा दक्षिणी भाग से ऊपर की ओर चक्र का स्पर्श करती हुई चलती है, सारे शरीर में निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। इसी त्रिकोण यौनि मण्डल में एक अति सूक्ष्म बिजली जैसी अदभुत दिव्य शक्ति वाली नाड़ी लिपटी हुई है। इसका दृष्टान्त एक ऐसी सर्पिणी से दिया जा सकता है, जो साढ़े तीन लपेटे खाई हुई अपनी पूँछ को मुख में दबा कर, शंख के आकार जैसी बनी हुई, सो रही है। इसे ही कुण्डलनी शक्ति कहते हैं। यह नाड़ी बिना प्रयोग होने पर सोई पड़ी रहती है। इसका शरीर सम्बन्धी कोई कार्य बाहरी दृष्टिकोण से प्रतीत नहीं होता। इसी कारण से पाश्चात्य शरीर शास्त्र के विद्वान Physiologist अभी तक इसका कुछ भी पता नहीं लगा सके, परन्तु प्राचीन यूनान, रोम आदि देशों के तत्व वेता इस बात से परिचित थे कि भारत वर्ष से ही सभी विद्याओं का प्रकाश फैला था। अफलातून (Plato) तथा पायथागोरस (Pythogorus) जैसे आत्मदर्शी विद्वानों के लेखों में इसका इस तरह से संकेत मिलता है कि नाभि के पास एक ऐसी अदभुत शक्ति विद्यमान है, जो मस्तक की प्रभुता अर्थात बुद्धि के प्रकाश को उज्जवल कर देती है, जिससे मनुष्य के अन्दर दिव्य शक्तियाँ प्रकट होने लग जाती हैं।

इस प्रकार योग साधना द्वारा प्राण शक्ति को मूलाधार चक्र से ऊँचा उठाकर, दशम द्वार तक पहुँचाया जाता है और यहाँ पर तीन प्रकार की विशेष समाधियाँ हैं। पहली सतप्रज्ञात समाधि कहलाती है। इसमें शबद सहित समाधि होती है। दूसरी को असतप्रज्ञात कहते हैं। इसमें ध्येय का रूप होकर समाधि लगती है लेकिन धीरे-धीरे ध्येय भी अलोप हो जाता है तथा स्वंय ही ध्येय बनकर समाधिस्थ होता है। इसे राजमेघ समाधि सहज समाधि कहते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि जीव धीरे-धीरे उन्नति करते-करते, अपने ध्येय प्रभु में लीनता प्राप्त कर लेता है, यह साधन प्राचीन युग में काफी प्रचलित रहा। हमारे पूर्वज भी गुरू घर से सतबन्ध रखने वाले, जिनके अन्दर विशेष शौक होता था, वे भी आज्ञा चक्र से ध्यान लगाते, ध्याता-ध्यान-ध्येय की त्रिकुटी में से गुज़रते हुए, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय का रूप होते हुए सहंसरार के शक्तियों के मण्डल में से ऊँचा उठकर प्रभु का ही रूप हो जाया करते थे। सो राज योग काफी समय तक एक प्रसिद्ध मार्ग रहा जिसमें सम, दम, आसन, प्राणायाम, प्रतिहार, धारना, ध्यान, समाधि के आठों अंगों का पालन करते हुए अपना कल्याण चाहते थे। इससे भी विलक्षण एक और मार्ग, हठ योग का प्रचलित था, बहुत से अन्य योग भी प्रचलित थे। जिनमें 'लय' योग भी था, जिसमें मन की पाँचों वृतियों को एकाग्र चित करना, दूसरा मन्त्र योग, गुरू से लेकर अपना चित जोड़ना जैसे कि मूल मन्त्र से अपनी वृति जोड़ना। तीसरा हठ योग था इसमें प्राणायाम का साधन प्रधान था। रेचक, पूरक, कुम्भक क्रियाएं करते हुए, प्राण, दसवें द्वार तक पहुँचाये जाते थे। चौथा योग था वेदों, शास्त्रों तथा महापुरुषों के शुभ वचनों द्वारा प्राप्त हुए ज्ञान पर पूर्ण निश्चय रख कर, अपनी वृति को जोड़कर भाव रूप में अपनी द्वैत समाप्त करना। पाँचवा राज योग जो गृहस्थ में रहकर भी किया जा सकता था जिसके बारे में पहले भी उल्लेख किया जा चुका है। इस प्रकार प्रकाश रूप प्रभु को ज्योति स्वरूप समझकर, अपनी वृति लय करना। भक्ति योग जो गृहस्थ में सहज ही किया जा सकता है। इसे गुरू महाराज जी ने श्रेष्ठ बताया है क्योंकि खाते पीते, पहनते, बच्चे पालते हुए, व्यापार करते हुए, सभी उतरदायित्व निभाते हुए भी किया जा सकता है। ये भक्ति योग नौ प्रकार का होता है। इसमें से यदि एक प्रकार का भक्ति

योग प्राप्त हो जाये तो भी प्रभु के दर पर पहुँचा जा सकता है। साँतवा अग्र भृत योग कहलाता है जिसमें मन्त्र कोई नहीं होता, केवल फोकट Meditation मनन चिन्तन, बिना मन्त्र के होता है। यह एक प्रकार का त्राटक भी होता है, बिना मन्त्र के प्राणायाम द्वारा प्राण को ऊपर चढ़ाना। एक मानसिक व्यायाम है। आठवाँ सरग भरत योग कहलाता है जिसमें मन्त्र सहित प्राणायाम कहा जाता है। यदि हम योगों की गिनती करें तो अनेक प्रकार के योग भारत में प्रचलित थे तथा विद्वानों ने एक लम्बी संख्या भी बताई है। कुछ विद्वान 64 प्रकार के योग बताते हैं तो कई महापुरुष 45 प्रकार के योग बताते हैं। योग का अर्थ जुड़ना हुआ करता है। चित वृतियों को एकाग्र करने, ध्येय के साथ जोड़ने का नाम योग है। यदि हम योग की गिनती करें तो राज योग, हठ योग, ज्ञान योग, कर्म योग, भक्तियोग, जप योग, लय योग, मन्त्र योग, शबद योग, प्राण योग, हंस योग, तन्त्र योग, ध्यान योग, भृगु योग, पुरुषोतम योग, प्रकृति योग, भाव योग, अभाव योग, स्पर्श योग, शिव योग, पाशुपति योग, प्रेम योग अनासक्ति योग, ब्रह्म योग, समाधि योग, नाम कीर्तन योग, तारक योग, अस्पर्श योग, बुद्धि योग, क्रिया योग, विज्ञान योग, गृहस्थ योग, पतिव्रत योग, सांख्य योग, कुण्डलनी योग, सुशिष्त योग, स्वपन योग, चित योग, इच्छा योग, मानस योग, ज्ञानेन्द्रिय योग, कर्मेन्दिय योग आदि बेअन्त प्रकार के योग विद्वानों, महापुरुषों के बताए गये प्रचलित हैं इनमें आठ योगों का काफी ज़ोर शोर रहा है। ये योग प्राय: सिद्ध लोग किया करते थे। इसी तरह से अनेक प्रकार की जप करने की विधियाँ भी प्रचलित थीं, वे अलग-अलग लक्ष्य प्राप्त हेतु, अलग-अलग ढंग से जप किये जाया करते थे।

संकटमोचन के लिये विशेष प्रकार के मन्त्र या गुरू की बाणी में से शबद लेकर खास गिनती के साथ जप करना। समय का विधान अलग-अलग हुआ करता था। कोई शबद अमृत बेला में पढ़ा जाता था, कोई दोपहर के समय, कोई शबद रात को 12 बजे से शुरू करके ब्रह्म मुहुर्त से पहले पहले किया जाता था। कई रात पहर के रहते-रहते जपे जाया करते थे, उनकी संख्या, उनके स्थान भी अलग-अलग हुआ करते थे। कोई घर में बैठकर जपा जाता था, कोई किसी कुएं पर जाकर जपा जाता था, कोई बहते हुए पानी के किनारे नहर, नदी किनारे पर जाकर, कोई मड़िआ मसानों पर जाकर, कोई उजाड़ स्थानों पर, अलग-अलग ढंगों से जपते थे। कोई चौराहे पर बैठकर, कोई किसी वृक्ष के नीचे बैठकर, कोई पानी में खड़े होकर, कोई एक टांग के बल पर खड़े होकर, कोई उलटा लटक कर जपा जाता था। इनमें से प्रसिद्ध जाप जो अपनी भलाई के साथ सम्बन्ध रखते हैं, उनमें से संकट मोचन शत्रु दमन, कल्याणकारी, स्व: अध्याय, स्वस्ति वाचन, इष्ट सिद्धि, कामय कलप, पाप दूर करने वाले, आग वरखन (आग उगलना) तथा उपांसु हुआ करता था तथा इन्हें सिद्ध करने के लिये तीन प्रकार के तप राजसी, तामसी और सांतकी तप किये जाते थे। इन जपों को गुरमत बिल्कुल भी प्रवान नहीं करती क्योंकि ये एक प्रकार से रिद्धियाँ-सिद्धियाँ तथा अपने निजी स्वार्थ के लिये फलों की प्राप्ति से सम्बन्धित हैं। हठयोग तथा ये जप-तप अनेक प्रकार के साधन आम तौर पर रिद्धियों-सिद्धियों की प्राप्ति के लिए किये जाते थे। सिद्धियों की संख्या क्त बताई जाती है। वैसे तो अनेक प्रकार की सिद्धियाँ हैं परन्तु प्रमुख क्त बताई गई हैं।

(1) अणिमा सिद्धि - परमाणु रूप धारण करके हर जगह प्रवेश कर लेना। इतिहास में कई स्थानों पर ऐसा उल्लेख आता है कि जब सिद्ध नाथ, गुरू महाराज जी से भेंट करते थे, तो आध्यात्मिक विचार तो बहुत कम ही किया करते थे, उसकी अपेक्षा सिद्धियों के मुकाबले अधिक किया करते थे। भाई गुरदास जी ने इसके बारे में अंकित किया है -

इही सुणि बचनि जोगीसराँ मारि किलक बहु रूइ उठाई।
खटि दरसन कउ खेदिआ कलिजुगि नानक बेदी आई।
सिधि बोलनि सभि अवखधीआ तंत्र मंत्र की धुनो चढ़ाई।
रूप वटाए जोगीआँ सिंघ बाघि बहु चलिति दिखाई।
इकि परि करि कै उडरनि पंखी जिवै रहै लीलाई।
इक नाग होइ पउण छोड़िआ इकना वरखा अगनि वसाई।
तारे तोड़े भंगरिनाथ इक चड़ि मिरगानी जलु तरि जाई।
सिधां अगनि न बुझै बुझाई॥

भाई गुरदास जी, वार 1/14

सो 18 प्रकार की सिद्धियाँ प्रवान हैं, जिनमें से अणिमा परमाणु का रूप धारण करके किसी को दिखाई न देना, ऐसी सिद्धि है।

2. दूसरी महिमा सिद्धि हुआ करती है। अपने शरीर को इतना बड़ा बना लेना जैसा कि बलि राजा को छलने आए भगवान ने अढ़ाई कदमों की धरती मांग कर, अपना शरीर इतना बड़ा बना लिया कि सारी धरती दो कदमों में नाप ली -

बलि राजा घरि आपणै अंदरि बैठा जगु करावै।
बावन रूपी आइआ चारि वेद मुखि पाठ सुणावै।
राजे अंदरि सदिआ मंग सुआमी जो तुधु भावै।
अछलु छलणि तुधु आइआ सुक्र परोहितु कहि समझावै।
करौ अढाई धरति मंगि पिछहु दे त्रिहु लोअ न मावै।
दुइ करवां करि तिंन लोअ बलि राजा लै मगरु मिणावै।
बलि छलि आपु छलाइअनु होइ दइआलु मिलै गलि लावै।
दिता राजु पताल दा होइ अधीनु भगति जसु गावै।

होइ दरवान महाँ सुखु पावै ॥

भाई गुरदास जी, वार 10/3

3. तीसरी गरिमा सिद्धि हुआ करती है, वह ऐसी होती है कि व्यक्ति का इतना बलवान हो जाना कि किसी से भी उसके शरीर का एक अंग भी न हिलाया जा सके जैसे अंगद ने रावण के दरबार में अपना पैर धरती पर जमा दिया था, परन्तु कोई भी उसे हिला न सका।

4. लघिमा सिद्धि होती है भारी देह से हल्की फुलकी देह बना लेना।

5. प्राप्ति सिद्धि के अनुसार जिस चीज़ की इच्छा करो, वही प्राप्त हो जाना।

6. प्राकमय सिद्धि सभी के मन की बात जान लेना।

7. ईषिता सिद्धि सभी को प्रेरित करके अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त कर लेना।

8. वशिता होती है सभी को अपनी आज्ञा में कर लेना। पूरी तरह वश में कर लेना।

9. अनुर्मि इसमें भूख प्यास आदि सारी वासनाओं को काबू कर लिया जाता है तथा महीने भर कुछ न खाना-पीना, गुफाओं में जाकर बैठ जाना, भूख प्यास पर नियन्त्रण करना।

10. दूर श्रवण दूर बैठे ही जिसकी मन चाहो बातें सुन लो।

11. दूर दर्शन दूर बैठे ही अपने नेत्रों से देख लेना। यदि कोई अपनी ओर आ रहा हो, उसे दूर से देखकर, पहले ही सारा प्रबन्ध कर लेना। दूर के दृश्य अपने नेत्रों से देखना।

इसके बारे में एक कथा है कि बाबा करम सिंघ जी होती मरदान एक दिन लांगरी सिंघ को कहने लगे कि आज एक हज़ार प्राणियों के लिये लंगर तैयार करना है। कड़ाह प्रसाद बनाना है। उस समय लांगरी सिंघ ने प्रार्थना की कि ''महाराज! लंगर में जब नया घी आयेगा तो प्रसाद तैयार हो सकेगा।'' तब बाबा जी बोले कि, ''आप साथ बह रही कलपानी नदी में से तीन पीपे भर लाओ, जब अपना घी आ जायेगा तो फिर वापिस कर देना।'' सो लांगरियों ने उसी तरह बड़े-बड़े कड़ाहों में लंगर तैयार करना शुरू कर दिया और नदी में से तीन पीपे घी (पानी) के लाकर भोजन तैयार कर लिया। दोपहर होते-होते एक पूरी फौज बाबा जी के दर्शन करने हित पहुँच गई। लंगर पहले ही तैयार था। सो लंगर सभी में बांट दिया गया जब लंगर बांट दिया गया तो एक प्रेमी तीन पीपे घी लेकर आया और उसने बाबा जी से बेनती की कि, ''बाबा जी नदी में पानी बहुत बढ़ गया था। मैं समय पर न पहुँच सका इसलिये क्षमा करना।'' बाबा जी ने लंगर के श्रीमान जी से कहा, ''आपने ये तीन पीपे घी के नदी से उधार लिये थे, जाओ वापिस कर आओ।''

एक बार मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ, मैंने चण्डीगढ़ से सन्त महाराज जी के दर्शन करने का विचार किया और सुबह ही 11 सैक्टर से 17 सैक्टर बस स्टैण्ड पर पहुँच गया। वहाँ पर जालन्धर, लुधियाना जाने वाले लोगों की बहुत बड़ी-बड़ी लम्बी लाइनें लगी हुई थीं। कुछ बसें बन्द हो जाने से ट्रैफिक का भी बहुत भारी इकट्ठ हो गया था। मुझे लाईन में खड़े-खड़े साढ़े नौ बज गये, मैं यह सोचकर कि अब मैं सन्त महाराज जी से नहीं मिल सकता, मैं अपने घर की ओर वापिस चल पड़ा। रास्ते में एक सुन्दर सा स्थान देखकर जो उस समय उजाड़ हुआ करता था, वहाँ पर एक गहरे नाले के किनारे एक सघन वृक्ष के नीचे बैठ गया। डेढ़ घंटे के बाद घर की ओर चल पड़ा, जब मैं अन्दर घुसने वाला ही था तो उसी समय राड़ा साहिब से जीप आ गई जिसे बहादुर सिंघ चलाया करता था। बाबू रला सिंघ जी उसमें से उतरे और मुझे बुलाकर कहने लगे कि, ''अब आप अन्दर मत जाओ, सन्त महाराज जी ने आपको बुलाया है।'' इतनी देर में दोनों प्रेमी अन्दर आ गये, जल-पान करने के उपरान्त, उन्हें सारी बात बताई कि रात सन्त महाराज जी ने हमें आज्ञा दी थी कि सवेरे ही वरियाम सिंघ को ले आना, पर फिर अचानक ही उन्होंने कहा कि इन्तज़ार कर लो, फिर साढ़े नौ बजे फिर हुक्म दिया कि, ''जाओ अब लेकर आओ।'' मैं सारी बात समझ गया था कि मुझे बस स्टैण्ड पर जाते हुए सन्त महाराज जी ने देख लिया था और जीप ले जाने से रोक दिया था, परन्तु जब बस स्टैण्ड से वापिस घर को चला तो उसी समय उन्होंने बाबू रला सिंघ जी को भेज दिया। इस प्रकार बहुत से महापुरुषों की आम ही ऐसी कथाएं हुआ करती हैं। दूर पर घटित होने वाली बातों को पहले ही जान जाया करते हैं। ऐसा गुरसिखों में आम ही हुआ करता था क्योंकि बन्दगी किया करते थे, वचनों के पक्के होते थे, अमृत बेला में उठ जाते थे और नाम बाणी का जाप किया करते थे। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि रिद्धियां-सिद्धियां, बन्दगी करने वालों के पीछे लगी रहती हैं और वहाँ पर सहज ही दासी बनकर, सेवा किया करती हैं।

12 मनोवेग सिद्धि इस सिद्धि द्वारा मन के फुरने (अकस्मात विचार) करने से ही जहाँ भी जाना हो, उस स्थान पर पहुँच जाया करते हैं। इसके बारे में गुरसिख इतिहास में आम साधारणतया उल्लेख मिल जाता है कि जहाँ मन चाहे बन्दगी करने वाले स्वंय ही पहुँच जाया करते थे। जैसे गुरू नानक पातशाह के समय, मूला दूर से ही वाहिगुरू कहते ही अपने घर सियालकोट पहुँच गया।

13. काम रूप सिद्धि में जो भी स्वरूप धारण करना चाहता है, वैसा ही रूप बना सकता है। चाहे शेर का रूप धारण कर लो,

चाहे साँप का, चाहे बहुत बड़े जानवर का, जैसा मन चाहे, वैसा रूप धारण कर सकता है। इस सम्बन्ध में अनेक साखियाँ हैं।

जैसा कि गुरू छठे पातशाह महाराज जी के समय घटित हुआ। गुरू छठे पातशाह जी को जहाँगीर ने ग्वालियर के किले में छल कपट द्वारा कैद करवा दिया। जब काफी समय बीत गया और आप किले से बाहर न आये तो उस समय बाबा बुड्ढा जी की रज़ा के साथ दो सिखों ने शेर का रूप धारण करके रात के समय जहाँगीर को मनुष्य की बोली में कहा, ''तू गुरू महाराज जी को किले से बाहर निकाल दे अन्यथा हम तेरा बहुत भारी नुकसान करवा देंगे। इसी प्रकार और भी बहुत से गुरसिखों की साखियाँ आती हैं, जिनसे यह पता चलता है कि जैसा रूप धारण करना चाहो, कर सकते हो।

क्ब. परकाया प्रवेश वह सिद्धि होती है जिसके द्वारा, जिस देही में कोई प्रवेश करना चाहे, उस देही में जैसे भूत-प्रेत प्रवेश करते हैं, उसी तरह प्रवेश किया जा सकता है जैसा कि मच्छन्दर नाथ ने लंका के राजा अमरू के शरीर त्यागने के बाद, अपना शरीर एक गुफा में रखकर, पहले बन्द कर दिया और स्वंय राजा के मृत शरीर में प्रवेश करके क्ब साल उसके शरीर में रहा। गोरख नाथ ने आकर उसे उस देह में से बाहर निकाला था।

क्भः स्वइच्छा मृत्यु इस सिद्धि द्वारा अपनी इच्छा से जब मन चाहे, जिस विधि से चाहे शरीर छोड़ दिया जाता है जिसके बारे में गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है -

गुरमुखि आवै जाइ निसंगु॥ पृष्ठ - 932

जब गुरू महाराज जी नन्देड़ साहिब गये हुए थे, एक दिन जब आप भोजन खाने के पश्चात बिराजमान हुए, उस समय मारू राग के कुछ शब्दों की आवाज़ गुरू महाराज जी ने सुनी। सेवादार से पूछा कि, ''ये शबद इस अवसर पर क्यों पढ़े जा रहे हैं?'' उस समय उन्होंने बताया, ''महाराज! भाई दया सिंघ जी शरीर छोड़ चुके हैं।'' गुरू महाराज जी ने कहा कि, ''भाई दया सिंघ जी हमें पूछ कर तो गये नहीं, उन्हें कहो कि हमें मिल कर जायें।'' उस समय गुरसिख ने भाई दया सिंघ जी के चरणों की ओर खड़े होकर प्रार्थना की कि, ''तुम्हें महाराज जी ने याद किया है।'' उसी समय भाई दया सिंघ जी अपने कुशा के आसन से उठकर साथ चल पड़े और आकर गुरू महाराज जी के चरणों में नमस्कार की और बहुत ही वैराग किया। गुरू महाराज जी ने कहा कि, ''आप हमें मिलकर नहीं गये?'' आपने उत्तर दिया कि, ''महाराज जी! इधर भी आपका ही हुक्म था, उधर भी आपका ही हुक्म था। दोनों तरफ आप ही हो। इसलिये आप का हुक्म ही ऐसा था कि अभी चलो।'' गुरू महाराज जी ने पूछा, ''कहाँ से लौट कर आए हो?'' तो भाई दया सिंघ जी ने बताया कि, ''धर्म खण्ड, सरम खण्ड, ज्ञान खण्ड, कर्म खण्ड को पार करके, जब सचखण्ड में प्रवेश ही करने लगा था तो उसी समय आपका हुक्म सेवादार ने सुनाया। सो आपके चरणों में आकर हाज़िर हुआ हूँ।'' गुरू महाराज जी ने कहा कि, ''हमारा सन्देशा लेते जाओ, जिसमें आपने वही सन्देशा दिया जो कि माछीवाड़े में शहीद रूहों द्वारा भी दिया था -

मित्र पिआरे नूँ हाल मुरीदां दा कहणा।
तुधु बिनु रोग रजाईआं दा ओढण, नाग निवासां दे रहणा।
सूल सुराही खंजर पिआला, बिंग कसाईआं दा सहणा।
यारड़े दा सानूँ सथर चंगा, भठ खेड़िआं दा रहणा॥

पातशाही 10

भाई दया सिंघ जी अपने आसन पर आकर पुनः लेट गये और शरीर त्याग कर सचखण्ड में प्रवेश कर गये। गुरू दशमेश पिता जी भी ख दिनों के पश्चात, अपना बचितर नाटक समाप्त करके, अपने निर्गुण स्वरूप में प्रवेश कर गये।

इसी प्रकार बाबा करम सिंघ जी होती मरदान वालों ने अपना शरीर त्यागते समय, संगतों को बुला लिया। संगतों में बहुत विरह देखकर, आपसे भाई लाल सिंघ जी ने प्रार्थना की कि, ''महाराज! आना-जाना तो आपके अपने हाथ में है, काल की कोई पेश नहीं चलती, इसलिये आप शरीर न त्यागो।'' तब बाबा जी ने कहा कि, ''हम तो जो गुरू घर की मर्यादा है उसका पालन करते हैं। एक तरकीब है कि तुम हमारी जगह पर चले जाओ। हम तुम्हारी ख साल ख महीने ख दिन जो बकाया हैं, तब चले जायेंगे। सो ऐसा ही हुआ।'' भाई लाल सिंघ जी शरीर त्याग गये और बाबा जी ने दो साल दो महीने दो दिन बाद, सैदू जाकर अपना पंच भूतक चोला त्याग दिया। ऐसी अनेक साखियाँ हैं।

भाई जीवन सिंघ जी, गुरू साँतवें पातशाह जी के समय के गुरसिख थे। एक बार एक ब्राह्मण का पुत्र अचानक मृत्यु को प्यारा हो गया। वह बार-बार प्रार्थना करने लगा कि इसे जीवित कर दीजिये और चिता बनवा ली कि यदि यह जीवित न हुआ तो मैं भी इस चिता में जलकर राख हो जाऊँगा। मसन्द भी गुरू महाराज जी से कहने लगे। गुरू महाराज जी ने कहा कि, ''यदि हम इस प्रकार मुर्दों को जीवित करने लगे, मुगलों का राज है, उन सभी ने अपने-अपने मुर्दे उठाकर यहाँ लाने शुरू कर देने हैं, इस प्रकार मर्यादा भंग हो जायेगी। यदि इसके साथ इतनी हमदर्दी है तो कोई अपने प्राण देकर इसे बचा सकता है। उस समय भाई जीवन सिंघ जी खड़े हुये, घास इकट्ठा किया उस पर अपना शरीर त्याग दिया और ब्राह्मण का लड़का जीवित हो गया। सो ऐसी अनेक साखियाँ हैं जिनसे पता चलता है कि स्वः इच्छा से शरीर त्याग देना, नाम जपने वालों के लिये आम बात हुआ करती है।

16. सुर क्रीड़ा सिद्धि इसमें जो साधक है, वह उस मात लोक में अपने पंच भूतक शरीर को सूक्ष्म बनाकर देव लोक में प्रवेश करके अपसराओं के साथ क्रीड़ाएं करता है। देवताओं के साथ मिलकर खेलता है।

17. संकल्प सिद्धि कोई भी संकल्प कर ले, वह पूरा हो जाता है, आम महापुरुषों के जीवन में पढ़ते हैं कि आपने संकल्प कर लिया और पूरा हो गया।

18. अप्रतिहतगति जहाँ मन चाहे, दिल करे, उसी स्थान पर चला जाता है। कोई बन्द दरवाजा, पहरेदार रूकावट नहीं डाल सकता। इस प्रकार वे सभी सिद्धियाँ बेअन्त प्रकार के साधनों से प्राप्त हो जाया करती हैं, पर गुरमत अनुसार गुरसिख इन सिद्धियों की कोई लालसा नहीं रखते। ये स्वयं ही गुरसिख के पीछे लगी रहती हैं और प्रार्थनाएं करती हैं –

ब्रहमु बिंदै तिसदा ब्रहमतु रहै
एक सबदि लिव लाइ।
नवनिधी अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरहि
जो हरि हिरदै सदा वसाइ॥ पृष्ठ – 649

रिद्धि उसे कहा जाता है जिसके अनुसार अन्न की कमी न आए, यह आम तौर पर गुरू के लंगरों में प्रयोग की जाती है।

सन्त महाराज के जीवन में एक घटना आती है कि एक बार आपने काफी लम्बा मौन रखा हुआ था। उस समय गुँज़रावाल से कुछ प्रेमी जरग से परचौणी (शोक) संतप्त परिवार को संवेदना प्रकट करके, राड़ा साहिब आ गये। आपने सहज ही हुक्म दे दिया कि कड़ाह प्रसाद बांटो। उस समय लांगरी सिंघ ने देखा कि बाटे में प्रसाद तो बहुत कम है लेकिन ये सौ से अधिक प्रेमी हैं। उसने महाराज जी के पास प्रार्थना की तो महाराज जी ने उसे बाबा किशन सिंघ जी के पास भेज दिया। उन्होंने बाटे के ऊपर अपना रूमाल रखते हुए उच्चारण किया–

तिचरु मूलि न थुड़ींदो जिचरु आपि क्रिपालु।
सबदु अखुटु बाबा नानका खाहि खरचि धनु मालु॥
पृष्ठ – 1426

वे सौ प्रेमी खूब जी भर कर कड़ाह प्रसाद खा गये। पास ही गाँवों के बच्चे पशु चरा रहे थे। उन्हें भी पता चला कि आज डेरे में कड़ाह प्रसाद बँट रहा है, वे भी तथा उनके अन्य साथी भी देखा देखी वहाँ आ गये, उस समय सभी ने प्रसाद खाया। जब सभी ने खा लिया तो महापुरुषों ने अपना रूमाल बाटे से उठाया तो लांगरी सिंघ हैरान रह गया कि न तो प्रसाद कम हुआ और न ही ज्यादा हुआ और इतने सारे प्रेमी खा भी गये।

'चलता'

मैं नाही

सन्त वरियाम सिंघ जी
बानी एवं संचालक वि. गु. रू. मिशन

शान..।

सतनाम श्री वाहिगुरू

धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज।

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥

पृष्ठ – 256

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ।
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥

पृष्ठ – 256

धारना – प्रभ सभ किछु तेरा जी,
मैं किछ नाही –2, 2
मैं किछ नाही, मैं किछु नाही – 2,2
प्रभ सभ किछु तेरा जी, ... – 2

मैं नाही प्रभ सभु किछु तेरा।
ईघै निरगुन ऊघै सरगुन
केल करत बिचि सुआमी मेरा।
नगर महि आपि बाहरि फुनि आपन
प्रभ मेरे को सगल बसेरा।
आपे ही राजन आपे ही राइआ
कह कह ठाकुरु कह कह चेरा।
का कउ दुराउ का सिउ बलबंचा।
जह जह पेखउ तह तह नेरा।
साध मूरति गुरु भेटिओ नानक
मिलि सागर बूंद नही अनहेरा॥ पृष्ठ – 827

धारना – प्रभ सभ किछु तेरा जी,
मैं किछ नाही – 2, 2
मैं किछ नाही, मैं किछु नाही – 2, 2
प्रभ सभ किछु तेरा जी, ... – 2

साध संगत जी! गर्ज कर बोलो, सतनाम श्री वाहिगुरू। दूर दराज़ से आप सावण, जिसे सावन भी कहते हैं, इस महीने के प्रथम शुभ दिन की हाज़िरी लगवाने के लिये, श्रद्धा एवं विश्वास के साथ, सैकड़ों किलोमीटर सफर तय करके यहाँ पर पहुँचे हो। वाहिगुरू आपकी यात्रा सफल करे। सावण के महीने के बारे में हमने विचार करनी है। जो शबद हमने पढ़ा है, यदि यह समझ में आ जाए, पहली ही पंक्ति है कि –

मैं नाही प्रभ सभु किछु तेरा॥ पृष्ठ – 827

इतनी सी ही बात है, इससे ज्यादा नहीं है। कोई ऐसे अर्थ मैं नहीं बता रहा कि बहुत कठिन व्याख्या करनी हो या बहुत बड़े दर्शन शास्त्र की बात कर रहा होऊँ। एक बात गुरू महाराज जी बता रहे हैं – 'मैं नाही प्रभ सभ किछ तेरा। पृष्ठ – त्ख्त्र' इसके मुकाबले में हमारे अन्दर इससे उलट निश्चय रखा हुआ है। वह यह है कि प्रभु! मैं हूँ और सब कुछ मेरा है। इतना ही हल्ला-गुल्ला है। यह शोर शराबा खत्म हो जाये तो फिर जन्म मरण के चक्कर में मनुष्य नहीं आता। अभी ही खत्म हो सकता है, इसी समय, यहीं पर बैठे-बैठे, यह मिटता नहीं है कितना जोर क्यों न लगा लो? कितने दर्शन शास्त्र पढ़ लो? कितनी तीर्थ यात्राएं कर लो? पचास बार आप हेमकुंट साहिब होकर आ जाओ, हजार बार हजूर साहिब दर्शन कर आओ, नहीं मिटता, करके देख लो। फिर मुझे आकर बताना कि बाबा जी झूठ बोलते हैं या सच। इसका रास्ता ही और है मिटाने का, यह रास्ता नहीं है। जो हमें सजा मिल रही है –

कई जनम भए कीट पतंगा।
कई जनम गज मीन कुरंगा।
कई जनम पंखी सरप होइओ।
कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ॥ पृष्ठ – 176

अब तो हमें ऐसे ही लगता है, जब गधे बने हुए थे और बोझ उठाया हुआ था, पानी भी पीने को नहीं मिलता था, गर्मी बहुत पड़ती थी, उस समय का हाल सोचा कि कैसे होता होगा? जीव आत्मा तो वही है न? बस केवल कपड़े बदलती है – कुता बनकर बदलती है, साँप बनकर बदलती है, कहीं एक जन्म नहीं –

कई जनम भए कीट पतंगा॥ पृष्ठ – 176

कीड़े मकौड़े भी बनते चले आये –

कई जनम गज मीन कुरंगा॥ पृष्ठ – 176

कई जनम हाथी, मछलियाँ, हिरण, मृग ही बनते चले आये –

कई जनम पंखी सरप होइओ॥ पृष्ठ – क्स्त्रम्

कितनी बार पन्छी ही बनते चले गये। साढे सात लाख प्रकार के पन्छी हैं। कहीं एक बार थोड़े ही बने हैं, बनते ही चले आए हैं। वाहिगुरू इतना मेहरबान है कि हमें पिछले जन्म भूल जाते हैं। पूर्व (पिछली बातें) तो हमें इस जीवन में भी जो बचपन में किया है, वह भी भूला हुआ है। जब हम मेहनत करते थे, उम्मीद ही नहीं थी कि इस इलाके में पहुँच जायेंगे, कारों में भी घूमेंगे,

कभी कोई सत श्री अकाल भी कह देगा, वह भूल गया हमें, वह भी याद नहीं रहा। आज वाली बात याद है कि मैं बहुत बड़ा बन गया हूँ। यह जो शोर शराबा है, यह हमें जन्म-मरण के चक्कर में घुमाता फिरता है। आप सभी समझदार हैं, तुम्हारे में से कोई अनजान नहीं है। बात बड़ी सीधी सी है, मैं तो यह देखता हूँ कि यदि positive mind (साकारात्मक मन) से हम बात नहीं सोचते, कुछ भी उन्नति नहीं हुआ करती। सोचिए! आप गुरूद्वारे आये हो, यहाँ आने का म्या लाभ? कितनी दूर से चलकर आए हो, सुबह के चले हुए हो, बरसात में कीचड़, पानी में से निकल कर आए हो, पाँवटे साहिब वाले बता रहे थे कि वर्षा होती रही, दूर दूर से भी बरसात में आए हो, क्यों आए हो? इतना कष्ट क्यों उठाते हो? कोई शिक्षा मिलती है? कोई वस्तु लेकर जाते हो? हमें अपने लक्ष्य का भी नहीं पता। ठीक है, हमारे संस्कार कोई ऐसे हैं जो हमें लिये फिर रहे हैं? होश में आकर बात नहीं करते तो परिणाम कुछ नहीं निकला करता, अर्धनिद्रा में घूमते रहते हैं। छोटी-छोटी बातें हमारे मनों में बसी हुई हैं पर पता नहीं कि ख्द्धख़ हम क्यों जाते हैं? क्या मतलब है हमारे आने का? ऐसे नहीं कि मुझे तो करोड़ों जन्म हो गये, करोड़ों वर्ष हो गये, भटकता फिरता हूँ? यह कोई आसान काम है कि मनुष्य आम हालातों में से निकल कर, इस अवस्था में पहुँच जाये? अभी अभी मैं यहीं पर बैठा सुन रहा था कि भाई हरपाल सिंघ जी कह रहे थे कि, ''दसवें पातशाह! मालवा में गये हुए हैं, वहाँ एक घोगड़ मार दिया। महाराज जी के हर बाण के साथ सवा तोला सोना लगा हुआ होता था। वह इसलिये था कि जिसको भी बाण लगे, उसका भला हो जाए। भला कैसे होता है? गुरू के हाथों से स्पर्श किया हुआ बाण जब लगता है, पहला काम तो यह करता है कि उसके सारे पाप नष्ट कर देता है। यह तो बड़ी भारी कृपा थी उनकी। दूसरा यह कि मृत शरीर इधर-उधर न पड़ा रहे.......। सवा तोला सोना आज के पाँच हजार रूपयों के बराबर है। यदि किसी का क्रिया-कर्म करना हो तो समझ लो, महाराज जी पूरा खर्चा दिया करते थे। आगे जाकर लावारिस न रहे क्योंकि यह हमारे हाथों मारा गया है।''

सो महाराज जी ने घोगड़ मार दिया, साथ ही विरले सिंघ, दान सिंघ जी जैसे महाराज जी की क्रिया को जानते नहीं थे क्योंकि नये-नये सिंघ बने थे। पहले जो सिख थे या तो वे शहीद हो गये, या फिर जो बचे थे, वे बहुत कम थे। वह तुरन्त बोल पड़ा, ''वाह महाराज जी! आपने तो घोगड़ मार दिया।''

महाराज जी कहते, ''हाँ, घोगड़ मार दिया।''

एक सिंघ विचारवान भी था और कहने लगा, ''सच्चे पातशाह! इसे बोलना नहीं आता, कृपा करके वह गुप्त भेद हमें बताओ कि घोगड़ क्यों मारा?''

महाराज कहते हैं, ''प्यारे! यह एक सौ एक जन्म से पहले राजा था और महापुरुषों का सिख था। एक गरीब गुरसिख के मन में आया कि मैं गुरसिखों को बुलाकर अपने घर में जल-पान करवाऊँ। मुझे प्रभु ने समर्थ दी है, उन्हें भोजन खिलाऊँ। राजा बहुत अच्छा था, उसने जाकर प्रार्थना की, ''महाराज जी! आज मेरे घर समागम है, गुरसिख इकट्ठे हो रहे हैं, आप भी दर्शन दें, जो जल-पान की सेवा मुझ से बन पायेगी, वह मैं सेवा में हाज़िर कर दूँगा।'' राजा कहने लगा, ''अच्छा भाई! मैं जरूर जाऊँगा। जब वह पहुँचा तो वहाँ पर अन्य गुरसिख भी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसकी एक लड़की थी अठारह उन्नीस वर्ष की, वह बहुत ही खूबसूरत थी। वह बड़े प्यार के साथ भोज वितरण कर रही थी। राजा ने जब उसकी ओर देखा, इन्हें पैसे की, माया की विष चढ़ी होती है, होश हवास गायब हुआ करते हैं आदमी के। वह एक दम काम वृमिें आ गया कि, ''हैं! इतनी सुनयनी लड़की। वह तो मेरे पास होनी चाहिए।'' भोजन कर लिया, जिस समय उसे विदा करने गया तो उसने सारे गुरसिख पीछे हटा दिए और कहने लगा कि मैंने गुरसिख से अकेले में बात करनी है। कहता है, ''अरे! देख सिखा! मैं हूँ राजा यहाँ का, तुझे तथा तेरे सारे परिवार को मरवा सकता हूँ, गरीब बना सकता हूँ। पर मैं यह काम नहीं करना चाहता। जबरदस्ती भी मैं तेरी लड़की को ले जा सकता हूँ, तू सम्मति के साथ अपनी लड़की को मेरे पास भेज दे।'' बहुत कठिन प्रश्न सामने आ खड़ा हुआ। गुरसिख गैरत वाला था - बन्दगी करने वाला। उसने कहा इससे तो मर जाना ही अच्छा है। उस लड़की ने जब पिता के तेवर बदले हुए देखे, चेहरा देखा। वह कहने लगी, ''पिता जी! अपने घर में आज संगत को भोजन खिलाया गया था, आपको तो खुशी होनी चाहिए थी, पर इसकी बजाए, आपके चेहरे पर ऐसे हाव-भाव दिखाई दे रहे हैं जैसे कोई बहुत गहरी चिन्ता में डूब गये हो। इसकी तो हमें प्रसन्नता होनी चाहिए थी। गुरसिख ने कोई जवाब न दिया। लड़की बहुत समझदार थी, फिर पूछा, बार-बार पूछा संगत विदा हो गई, फिर पूछा कि, ''पिता जी! मुझे बताओ। आप किसी गहरी चिन्ता में फंसे हुए हो?'' कहने लगा कि, ''बेटी! मैं क्या करूं? मेरी इज्ज़त का सवाल आ गया। एक तरफ राजा है, एक तरफ उसकी मूढ़मति है, एक तरफ वह सभी कुछ कर सकता है, हमें उजाड़ सकता है यदि मैंने उसकी बात न मानी, मार भी सकता है, जबरदस्ती भी कर सकता है।'' कहने लगी, ''ऐसी कौन सी बात है?'' पिता ने बताया, ''उस पामर राजा ने तेरे बारे में कहा है कि मेरे पास भेज दो लड़की को। मैं कैसे भेज दूँ?'' कहने लगी, ''आप चिन्ता मत करो, मैं स्वंय ही जाऊँगी

और मुझे अपनी इज़्ज़त बचाने का पता है।'' कहने लगा, ''बेटा! बहुत ज़ाहिल है।'' लड़की बोली, ''कोई बात नहीं, आप चिन्ता न करें, मैं तुम्हारे माथे पर कोई कलंक नहीं लगने दूंगी। मैंने बन्दगी की है बचपन से नाम जपा है, मेरी वृति में आज तक कोई गिरावट नहीं आई, मैं सती हूँ। आप कोई चिन्ता मत करो मेरी इज़्ज़त, मेरा मतगुरू स्वंय बचायेगा।'' वह चली जाती है। जाकर कहती है, ''मैं आ गई हूँ, बताईये क्या बात है?'' उस राजा ने अपनी मन्द वासना वाली बात कही। वह कहती है, ''अच्छा! मैं कल तैयार होकर आऊंगी, मेरी कल प्रतीक्षा करना।''

दूसरे दिन वह गुरमुख लड़की राजा के पास गई तो उसने समझाया कि, ''राजन! राजा माँ-बाप हुआ करते हैं। तुझे परमेश्वर ने बहुत ऊँची पदवी से विभूषित किया है। ये बुरे कर्म मत सोच। हम तेरे बाल बच्चे हैं। प्रजा सन्तान हुआ करती है। यह गलत बात मत सोच। साथ ही यह भी कहती जा रही है कि तू इस बात में सफल भी नहीं होगा। जब उसने जबरदस्ती उसकी बाजू पकड़ ली तो उसके दूसरे हाथ में ज़हर था, उसी समय निगल गई।

कहने लगी, ''तूने बुरा कर्म करने की लालसा की, गन्दगी खाने की नियत बनाई है, जा! सौ जन्म तू घोगड़ बनेगा।''

अब सौ जन्म उसके गुरू दसवें पातशाह के समय समाप्त हुए और सती का वचन था, वह कैसे टल सकता था? वह मर जाता था फिर घोगड़ बन जाता था, मर जाता था फिर घोगड़ बन जाता था। घोगड़ की खुराक गन्दगी खाना हुआ करता है। वह वृक्ष के सूखे हुए टहने पर बैठा था। गुरू महाराज जी ने बाण मारा।

सो महाराज जी ने सारी कहानी सुनाई कि राजा ने पुण्य दान तो बहुत किये थे, कुछ समय उसने महापुरुषों की संगत भी की थी, उसका फल भी उसे मिलना था। इसलिये उस लड़की का वचन, एक सौ जन्म घोगड़ बनने का पूरा हो गया और हमने इसके द्वारा किये गये पापों को माफ कर दिया क्योंकि इसने भोग लिया है।

सो मैंने यह सारी साखी इसलिये बताई है कि कहाँ राजा और कहाँ गन्दगी खाने वाला घोगड़? जीव आत्मा जो इस शरीर में रहता है, वह कहीं गैब में नहीं फिरता रहता कि ऊपर जाकर गायब हो गया और कहीं अता पता ही नहीं -

किथहु उपजै कह रहै कह माहि समावै॥

पृष्ठ - 1193

महाराज जी ने प्रश्न के रूप में बताया है कि यह जीव कहाँ से आता है? कहाँ रहता है? और जब मर जाता है फिर कहाँ चला जाता है? महाराज जी कहते हैं -

जीअ जंत सभि खसम के कउणु कीमति पावै॥

पृष्ठ - 1193

इतने जीव जन्तु हैं कि यदि हम गिनती करें तो इसी धरती पर एक अरब हम मनुष्यों की आबादी होने वाली है थोड़े दिनों में। एक अरब का कौन हिसाब किताब लगा पायेगा? फिर यौनियाँ हैं, एक एक यौनी में लाख-लाख किस्में हैं। साढ़े तीन लाख किस्म के पन्छी हैं - एक एक किस्म के लाखों करोड़ों हैं। यह संख्या खरबों-खरबों-खरबों-खरबों में चली जाती है। महाराज जी कहते हैं, ''प्यारे! इतनी बड़ी संख्या का मूल्य कौन बता सकता है? इतने तो कागज़ भी नहीं बने। यदि सारी दुनियाँ के कारखाने भी क्यों न चल पड़े और कागज़ ही बनाते रहें, तो भी उनके हाल नहीं लिखे जा सकते। ठीक है, कर्मों के अनुसार उसे वस्त्र मिलते हैं, उसे शरीर मिलता है। वह जो यौनियों में भटकता फिरता है, बार-बार जन्मता और मरता है, उसे जीव-आत्मा कहते हैं -

मरणहारु इहु जीअरा नाही॥ पृष्ठ - 188

यह मरता नहीं है। इसे कर्मों के अनुसार शरीर रूपी वस्त्र मिलता है। कैसा मिल जाता है? महाराज जी ने बताया भी है-

अंति कालि जो लछमी सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै।
सरप जोनि वल वल अउतरै॥ पृष्ठ - 526

साँप का शरीर मिल जाता है, सूअर का भी मिल जाता है, वेश्या का भी मिल जाता है। भूत का भी मिल जाता है। भूतों की तो बहुत बड़ी आबादी है। एक भूत मुझे मिला, वह पढ़ा लिखा था, बहुत पढ़ा लिखा हुआ - मौलवी था वह। सुलेमान नाम था उसका। मैंने कहा, ''सुलेमान! यह तो बता, तुम्हारी कितनी आबादी होगी?'' मुझे वह गिल साहिब कहा करता था।

कहता है, ''गिल साहिब! आप की कितनी है?''

मैंने कहा, ''उस समय हम नम्बे करोड़ से थोड़ा सा कम थे। चलो।'' मैंने कहा, ''एक अरब समझ लो।'' कहता, ''इसे तीन सौ से गुणा कर लो।''

मैने कहा, ''यह तो तीस खरब हो गये।''

कहता, ''तीस खरब हम प्रेत हैं। एक मनुष्य तीन सौ हम, यह हमारी संख्या है।''

मैंने कहा, ''रहते कहाँ हो?''

कहता, ''सारा ब्रह्मण्ड, जंगल, खाली जगह, उजड़े हुए स्थान खण्डहर ये सभी हमारे रहने की जगह हैं, जहाँ मन करता है, वहीं रहते हैं।''

मैंने कहा, ''कुछ थोड़ा बहुत तो बता।''

कहता, ''क्या बताना है, ऐसे ही लोग डरेंगे, यदि मैंने बता दिया। हम चिपकते हैं जैसे चमगादड़ चिपके रहते हैं, हम थोड़े-थोड़े Point बिन्दु को चिपक कर बैठे रहते हैं। हमें हुक्म नहीं है कि तुम्हें कुछ कह सकें। हम तभी दुख देते हैं, या

तो हमें कोई बान्ध कर किसी के अन्दर घुसा दे या हमारा कुछ लेना देना हो, तब पकड़ते हैं। अन्यथा हम तो दुनियाँ को मार दें, पर हमारा वश नहीं चलता जहाँ परमेश्वर का कोई नाम जपता है। यमदूत भी भाग जाते हैं, हमने तो भागना ही था''-

नामु सुणत जमु दूरहु भागै॥ पृष्ठ - 1150

सो इस प्रकार यौनियाँ ही यौनियाँ हैं। इसका लेखा-जोखा कौन कर लेगा? दुनियाँ में कौन ऐसा पैदा हुआ है, जो इस सभी का लेखा रखे? महाराज जी कहते हैं -

जीअ जंत सभि खसम के कउणु कीमति पावै॥ पृष्ठ - 1193

चलो जितना हमें पता है उतना ही ले लो। कुतो-बिल्ले जो हम देखते हैं आँखों से, इन्हीं यौनियों में से गुज़रना पड़ता है -

सन्त कै दूखनि त्रिगद जोनि किरमाइ॥ पृष्ठ - 279

जो सन्तों को दुखी करता है, तंग करता है, वह तो किये जाता है, पर सन्त दुखी नहीं होते। यह भी अन्तर है, सन्त नहीं दुखी हुआ करते। उनके अन्दर इतना आनन्द होता है, इतनी प्रसन्नता होती है कि वे अपनी वृति को ऊपर सतोगुण से निखिद्ध तमोगुण रूपी क्रोधी, कामी, लोभी, वैर भाव वाली नीचे वाली अवस्था में लाना नहीं चाहते -

नानक भगता सदा विगासु॥ पृष्ठ - 2

वे सदा ही आनन्दित रहते हैं। गुरू पाँचवे पातशाह जी ने सांई मीआं पीर से कहा कि, ''सच्चे पातशाह! आप गर्म तवे पर बैठे हो, पानी में उबाल दिये गये। सारी दुनियाँ को आप एक फुरने में ही खत्म कर सकते हो, आप इन्हें श्राप नहीं दे सकते?'' महाराज जी कहते हैं, ''मीआं पीर! किसके साथ द्वैष करें? यहाँ वाहिगुरू, परमेश्वर के सिवाय और कोई है ही नहीं?''

आपे पावकु आपे पवना।
जारै खसमु त राखै कवना॥ पृष्ठ - 329
पउण पाणी बैसंतर माहि॥ पृष्ठ - 294

कहते हैं, ''हमने सुखमनी साहिब में बताया है कि पवन में भी वही है, पानी में भी वही है, बैसन्तर (आग) में भी वही है। यदि गर्म पानी वाली देह में, हमें उबाला दे दिया गया, वहाँ भी वही था और तो कोई था ही नहीं। अब इस गर्म तवे पर बिठाया हुआ है, आग भी स्वंय ही हैं, तवा भी आप ही हैं, वह भी स्वंय ही हैं। कौन किस पर बैठा है? कौन किसे श्राप दे? सारी लीला मेरे प्रभु जी की है। सभी उसकी रज़ा में घटित हो रहा है।''

ऐसी दृष्टि महापुरुषों की हुआ करती है। दुनियाँ को इसकी समझ नहीं आती। वे सदा ही आनन्द चित रहते हैं। महाराज जो कहते हैं कि यदि कोई दुखी करता है वह कुतों के सिरों में जी कीड़े पैदा होते हैं, वह बनते हैं -

सन्त कै दूखनि त्रिगद जोनि किरमाइ॥ पृष्ठ - 279

कृमि बनता है फिर दूसरा-

जिस कै अंतरि राज अभिमानु॥ पृष्ठ - 278

जो राजसी शक्ति का अभिमान करता है, वह कहाँ जाता है? कहते हैं -

सो नरक पाती................॥ पृष्ठ - 278

पहले तो नरक भोगेगा, फिर उसके बाद -

..................होवत सुआनु॥ पृष्ठ - 278

कुता बन कर घूमता फिरेगा। सो यह जो चक्र है साध संगत जी! जो हमारे सामने पर्दा डाल दिया परमेश्वर ने, हमें पता नहीं चलता कि हमने जाना कहाँ है और क्या बनेगा? यह एक बहुत भारी माया का अन्ध गुम्बार है। हम माया के वश में आकर, मनुष्य जामा धारण करके, इस बात को समझने की कोशिश नहीं करते। आज का दिन देखते हैं, पहले भी भूल गये हमें, पिछले भी भूल गये, जो आगे आयेंगे, उनका हमारे दिमाग में ध्यान ही नहीं है कि फिर क्या बनेगा?'' महात्मा आवाज़ें लगाते हैं कि, ''प्यारे! तू नाम जप ले। यदि तुझे शरीर बुरा मिल गया फिर तो तू चक्कर में पड़ गया और पता नहीं किस समय तेरी बारी आ जाये; नाम तो जपा नहीं जायेगा इस तरह फ़रमान करते हैं -

धारना - गुंगा मुख हो गिआ,
फेर किवें नाम जपेगा - 2, 2
किवें नाम जपेगा - 2, 2
गुंगा मुख हो गिआ, ... -2

दो पैर मिले हुए हैं। कहते हैं फिर चार मिल जायेंगे, फटे हुए पैर। दो सींग भी मिल जायेंगे, लम्बा मुँह मिल जायेगा, मुँह हो जायेगा गूंगा और रम्भाने के सिवाय कुछ नहीं कर सकेगा। फिर तुझे खाली नहीं बैठने देना, तेरी नाक फाड़ कर इसमें नथ डाल दी जायेगी, कन्धों पर होगी पंजाली, हल चलाने के लिये तेरा प्रयोग किया जायेगा, फिर कन्धा थक जायेगा तेरा। फिर तुझे खाने को कुछ नहीं मिलेगा, अब बता? फिर क्या करेगा तू -

चारि पाव दुइ सिंग गुंग मुख तब कैसे गुन गईहै।
ऊठत बैठत ठेगा परिहै तब कत मूड लुकईहै॥

पृष्ठ - 524

छड़ी की मार पड़ेगी एक दम, ''उठ ओए।'' हल में जोड़ दिया तो डण्डे ही खाता रहेगा। उसने कौन सा बोलकर बताना है कि मुझे डण्डा मत मार। यदि वह बताये भी तो कौन उसकी परवाह करेगा। फिर कहते हैं कहाँ सिर छिपायेगा-

हरि बिनु बैल बिराने होईहै।
फाटे नाकन टूटे काधन कोदउ को भुसु खईहै॥

सारो दिनु डोलत बन महीआ अजहु न पेट अघईहै॥

पृष्ठ – 471

वाहिगुरू का नाम न जपने के कारण बैल हो गया। सारा दिन जंगल में घूमता है, तेरा पेट भी नहीं भर पाता और यदि तू मेरा कहना मान लेता तो कबीर साहिब कहते हैं –

जन भगतन को कहो न मानो कीओ अपनो पईहै।
दुख सुख करत महा भ्रमि बूडो अनिक जोनि भरमईहै।
रतन जनमु खोइओ प्रभु बिसरिओ इहु अउसरु कत पईहै।
भ्रमत फिरत तेलक के कपि जिउ गति बिनु रैनि बिहईहै।
कहत कबीर रामनाम बिनु मूंड धुने पछुतईहै॥

पृष्ठ – 524

जब हम कहते थे, नाम जपो, नाम जपो, यदि मान लेते तो अच्छा ही था, आज देख, तुझे यह यौनि प्राप्त हो गई। इस संसार ने ऐसे ही चलते रहना है साध संगत जी! रूकना नहीं है। ऐसा नहीं है कि –

आप मूए जग परलो।

कि जग भी मर गया। नहीं, अपना जीव आत्मा जाता है। दरगाह में तराजू लगा हुआ है। कम्पयूटर लगा हुआ है, जहाँ एक दम पता चल जाता है –

नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा।
करि अउगण पछोतावणा॥ पृष्ठ – 524

उसी समय नया वस्त्र मिल जायेगा। पहले-पहले यह झांक कर देखता है कि यह क्या मिल गया मुझे? फिर आदी हो जाता है। सो महाराज जी कहते हैं, ये बातें हम भूल गये, हमें यह पता ही नहीं कि हमारा छुटकारा कैसे हो? छुटकारे की प्रार्थना मैंने पहले ही कर दी कि यदि कोई यह समझ ले जो पहली धारना पढ़ी है –

धारना – प्रभु सभ किछु तेरा जी,
मैं किछु नाही – 2, 2
मैं किछु नाही – 2, 2
प्रभ सभ किछु तेरा जी, ...–2
मैं नाही प्रभ सभु किछु तेरा॥ पृष्ठ – 827

एक ही पंक्ति है, इसके अर्थ आप सभी जानते हो, इसके बिल्कुल उलट हैं – हम। कि 'मैं' हूँ और 'मेरा' सब कुछ है – मेरी ज़मीन है, मेरा घर है, मेरे बच्चे हैं, मेरे रिश्तेदार हैं, मेरा-मेरा खत्म नहीं होता, मेरा देश है, मेरा धर्म है, कितना ही बोलते जाओ – मेरा-मेरा। महाराज जी कहते हैं –

जब लगु मेरी मेरी करै।
तब लगु काजु एकु नाही सरै॥ पृष्ठ – 827

जब 'मेरी-मेरी' मिट जाती है फिर जो 'मेरी-मेरी' मिट जाने के बाद जो असली है, वही रह जाता है –

जब मेरी मेरी मिट जाइ। तब प्रभ काजु सवारहि आइ॥

पृष्ठ – 1161

वह तो स्वंय ही अन्दर रहता है, वहाँ पर झूठा पर्दा पड़ा हुआ है, यह दर्शन शास्त्र की बात है। बहुत बार मैंने बताया है संगत में। गुरू नानक पातशाह के पास इन्द्रसैन आया, जब आप झण्डा बाड़ी के पास गये, राजा शुद्रसैन का वह भानजा था।

महाराज जी कहते हैं, ''तुझे क्या चाहिए इन्द्रसैन?''

कहता है, ''महाराज! मुझे सत-चित-आनन्द में प्रवेश करा दो। मुझे ब्रह्म आनन्द चाहिए।'' ब्रह्म आनन्द कहते हैं इसे।

आनन्द तो दुनियाँ में बहुत है। रोटी अच्छी मिल गई तो कहता है आनन्द आ गया। कोई फिल्म देख ली, कहता है आनन्द आ गया, ये सभी विषय आनन्द कहलाते हैं। आगे चलकर आनन्द की बहुत सी श्रेणियाँ हैं जो अन्तिम आनन्द है, वह ब्रह्म आनन्द कहलाता है।

महाराज जी कहते हैं, ''फिर, इसकी दक्षिणा तो प्यारे, पहले देनी पड़ती है।''

कहता है, ''महाराज! जो कुछ मुझ से लेना हो ले लो।''

महाराज कहते हैं, ''तू पढ़ा लिखा है, शास्त्रों का ज्ञाता है, वेद पढ़ा हुआ है।''

कहता है, ''हाँ जी! सभी सुने हुए हैं महाराज। पर मैं वहाँ तक पहुँच नहीं सका।''

महाराज कहते हैं कि, ''फिर तू जानता है कि आत्मा क्या है? अनात्मा क्या है? इसका निर्णय कर।''

कहता है, ''महाराज! आत्मा के सिवाय जो कुछ भी है, जिसे हम जान सकते हैं, सूँघ सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं, स्वाद चख सकते हैं। जो कुछ हमारी सोच में आ सकता है, हमारी बुद्धि में आ सकता है, वह सभी अनात्म है।''

महाराज जी कहते हैं, ''वह बेकार चीज़ है न आत्मा की तुलना में?''

कहता है, ''हाँ जी!''

महाराज जी कहते हैं, ''दे दे हमें। जो कुछ तेरे पास है दे दे।''

उस समय सावधान हुआ, नेत्र बन्द किए और अंजली में जल लेकर मनसवा दिया।

महाराज जी कहते हैं, ''क्या मनसवा है........... ?''

कहता है, ''महाराज! मेरी बेअन्त कोठियाँ हैं, बाज़ार हैं, मैं राजा का भानजा हूँ। धन, दौलत सभी कुछ मेरे पास है। यह मैंने सारा का सारा संकल्प करके आपके चरणों में अर्पित कर दिया।''

महाराज जी कहते हैं, ''अब तेरा स्वामित्व तो नहीं इन पर रहा? हम चाहे, सारी की सारी गरीबों में बांट दें।''

कहता है, ''हाँ, महाराज! मेरा कोई स्वामित्व नहीं इन पर।''

महाराज जी ने कहा, ''अब देख! तेरे पास क्या रह गया?''

सोचा कि यह शरीर है मेरे पास जो अनात्म है, पाँच तत्वों तथा पच्चीस प्रकृतियों का बना हुआ है।

कहने लगा, ''यह शरीर भी अनात्म है।''

महाराज जी कहते हैं, ''यह भी दे दे। अब तेरे पास या रह गया?''

सोचता जा रहा है, कहता है, ''अब तो मेरे पास कुछ है नहीं महाराज।'' महाराज जी कहते हैं, ''इसके नीचे एक सूक्ष्म शरीर और है, इसके अन्दर पाँच प्राण हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन आदि सत्रह तत्वों का बना हुआ है।''

सोचकर बोला, ''महाराज! वह भी मैंने दे दिया।''

महाराज जी कहते हैं, ''अब देख तेरे पास क्या रह गया? सभी कुछ नहीं दिया तूने अभी।''

कहता है, ''हाँ महाराज! सारा कुछ दे दिया।''

महाराज जी कहते हैं, ''तू फुरना कर रहा है। विचार करना तो मन का धर्म है और मन सूक्ष्म शरीर का एक अंग है, फिर तूने मन तो हमें दिया ही नहीं।'' समझो इस बात को ज़रा, थोड़ी सी कठिन है।

काफी देर सोचने के बाद बोला, ''महाराज! मैंने मन भी दे दिया।'' जिसने मन बेच दिया है, महाराज! इस तरह फ़रमान करते हैं –

धारना – मन वेच दे गुरां नूं आपणा,
कारज तेरे रास होणगे – 2, 2
मेरे पिआरे कारज तेरे रास होणगे – 2, 2
मन वेच दे गुरां नूं आपणा,.........–2

मन बेचै सतिगुर कै पासि।
तिसु सेवक के कारज रासि॥ पृष्ठ – 286

सीधा Formula (सूत्र) है पर ये बातें व्यवहार में नहीं हो सकतीं जो मैं कह रहा हूँ। बातें तो सीधी सी ही हैं न? न हम मन बेच सकते हैं, न शरीर बेच सकते हैं, न हम यह कह सकते हैं कि मेरा कुछ नहीं है, वैसे हम गाकर सभी कुछ कह लेते हैं पर वास्तव में हम कुछ भी नहीं दे रहे। कही भ्रम हो जाये कि बाबा जी सच कह रहे हैं – मैं कुछ नाहीं जी, सब कुछ तेरा। यह बात बहुत कठिन है। जब यह बात हो जाती है तो वह परमेश्वर बन जाता है।

ब्रहमगिआनी कउ खोजहि महेसुर।
नानक ब्रहमगिआनी आपि परमेसुर॥ पृष्ठ – 273

महाराज जी कहते हैं, ''मन से फुरना किया तूने?''

कहता है, ''हाँ जी।''

कहते हैं, ''क्या फुरना किया था?''

कहता है, ''मैंने यहीं किया था कि मैंने कोठी आदि सभी कुछ बेच दीं, आपके चरणों में भेंट कर दीं।''

महाराज जी कहते हैं, ''मन तेरा भागा न फिर?''

हमारा मन भी भागता है। कहते हैं कि पाठ करते समय मेरा मन नहीं लगता, मन बहुत भागता है। उसे पकड़ा दो गुरू को, अपने पास रखो ही मत; झगड़ा ही खत्म हो जायेगा। मन दे दिया तो सभी कुछ दे दिया। मन तो साफ सुथरा है नहीं, मैली चीज़ है –

मनि मैलै सभु किछु मैला
तनि धोते मनु हछा न होइ॥ पृष्ठ – 558

कितना मैला है?

जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी।
काला होआ सिआहु॥ पृष्ठ – 651

करोड़ों जन्मों की बदबूदार मैल लगी हुई है। गुरू कहता है, यह मुझे दे दे। गुरू के काम नहीं आएगा मन, वह तुम्हें बचाना चाहता है कि यह गन्दगी से भरा हुआ, यहाँ रख दे हमारे चरणों में। वह एक ही दृष्टि से साफ करके पुनः तुम्हें लौटा देंगे। स्वच्छ मन को उनमन कहते हैं, नाम बदल जाता है – उसका। उसे बहुत ताकतवर बन कर कहा, ''जी! मन भी दे दिया।'' फिर खड़ा रहा।

अब बुद्धि आ गई, वहीं से निर्णय करने लग पड़ी कि मन भी बेच दिया, गुरू साहिब इन्तज़ार कैसे करेंगे उसका?

महाराज जी कहते हैं, ''यह क्या करता है। अब तू निर्णय कर रहा है?''

कहता है, ''हाँ जी।''

महाराज जी कहते हैं, ''निर्णय करना धर्म होता है बुद्धि का, यह आत्म है।''

कहता है, ''नहीं जी! अनात्म है।''

कहते हैं, ''तुझे एक बार कहा है कि अनात्म चीज़ें सभी मुझे दे दे।''

उसने बुद्धि भी दे दी। अब फिर खड़ा होकर चितवना किये जा रहा है कि बुद्धि भी गई, मन भी गया, जायदाद भी गई, शरीर भी गया, सभी अर्पण कर दिया।

महाराज जी कहते हैं, ''अब क्या कर रहा है तू?'' आन्तरिक बातें जानते थे।

कहते हैं, ''अब तू चितवना कर रहा है। चितवना करना तो चित का धर्म होता है। यह भी हमें दे दे।''

समझ आ गई, चित भी दे दिया। अब सबसे कठिन चीज़ रह गई जिसे हम नहीं दे सकते – न गुरू को दे सकते हैं न परमात्मा को। वह कहते हैं, ''तुझे सारी बातों से छुटकारा दिला दूँगा।'' कहता, ''नहीं! वह कहते हैं, ''यह मूल है दुखों का, जो चीज़ अब मांगनी है हमने तेरे से। तुझे खराब करती रहती है, तू भटकता फिरता है।''

कहते हैं, तुझे लगता है कि ''मैं हूँ?'' तुझे अपना आपा (निजित्व) महसूस हो रहा है।

कहता है, ''हाँ जी।''

महाराज जी कहते हैं, ''फिर यह दे दे हमें कि 'मैं' हूँ। यह 'मैं' दे दे जिसे तू सम्भाल कर रखे हुए हैं, 'मैं' ही सभी दुखों का कारण है। यही अज्ञान का मूल है।''

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि।
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि॥ पृष्ठ–466

कहते हैं, ''यौनियों में भटकता फिरता है प्यारे।''

धारना – जंमदा ते मरदा है,
हउमै दा बंनिआ होइआ–२
हउमै दा बंनिआ होइआ–२
जंमदा ते मरदा है,..........–२

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि।
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि॥ पृष्ठ–466

सारा संसार। महाराज जी कहते हैं कोई विरला ही है –

हैनि विरले नाही घणे फैल फकड़ु संसारु॥
पृष्ठ – 1427

कोटन मै नानक कोऊ नाराइन जिह चीत॥
पृष्ठ – 1427

करोड़ों मनुष्यों में से, महाराज जी ने अनुमान लगाया कि एक हो सकता है – करोड़ में से, पर एक करोड़ नहीं, महाराज जी ने कोटिन कहा है, कोटिन का अर्थ होता है, कई करोड़ों में से एक है। अब हिन्दुस्तान की जनसंख्या – करोड़ तक पहुँच गई है, दो या चार रहा करते हैं हमेशा, ताकि संसार चलता रहे क्योंकि संसार की सिरजना ही परमेश्वर के प्यारों के लिये हुई है –

संत हेति प्रभि त्रिभवण धारे॥ पृष्ठ – 224

सन्तों के लिये संसार की रचना की है पर –

कबीर धरती साध की तसकर बैसहि गाहि॥
पृष्ठ – 224

चोर आकर बैठ गये, इस पर। चोरों को सुमति देने के लिए परमेश्वर सन्तों को संसार में भेजता रहता है, यह भी उसका खेल ही है, यदि वह चाहे तो एक ही सैकिण्ड में स्वंय ही सिद्ध कर देता है। एक 'एटम बम्ब' गिर जाये, काफी है। सभी स्थानों पर वाहिगुरू–वाहिगुरू उसी समय होने लग जायेगी, भूचाल आ जाये काफी लम्बा, वाहिगुरू–वाहिगुरू पर वह कहता नहीं, इस तरह वह भी खेल रहा है, भेजे जाता है कि जाओ, तुम भी जाओ, तुम भी जाओ।

सो इस प्रकार साध संगत जी! महाराज जी ने कहा कि असली चीज़ तो तू लिये बैठा है, वह मुझे दे दे, यदि ब्रह्म आनन्द लेना है तूने। उस समय उसने अपना अस्तित्व दे दिया, ''इन्द्रसैन जिसे कहते थे, वह पकड़ा दिया, महाराज जी के चरणों में, स्वंय खत्म हो गया। अब जब खत्म हो गया तो क्या हुआ–

जिउ जल महि जलु आइ खटाना।
तिउ जोती संगि जोति समाना।
मिटि गए गवन पाए बिस्राम।
नानक प्रभ कै सद कुरबान॥ पृष्ठ – 278

उस समय आत्म ज्योति जो सभी जगह परिपूर्ण है, उसी समय प्रत्यक्ष हो गई। पर्दा ही 'मैं' का डाला हुआ है। जब प्रत्यक्ष हुई तो उसकी समाधि लग गई, उसका अस्तित्व ही खत्म हो गया। वह सभी कुछ भूल गया, केवल परमेश्वर का आनन्द रह गया। सत–चित–आनन्द वाहिगुरू का रूप बना दिया। तीन घंटे बीत गये, महाराज जी ने फिर समाधि से उठाया।

कहते हैं, ''ले इन्द्रसैन! तूने ब्रह्म आनन्द के दर्शन करने थे, तुझे करवा दिये हमने। यह तेरी 'मैं' हम तुझे वापिस लौटाते हैं पर तू धोखा मत खा जाना – इससे, यह तेरी नहीं है, वह बनावटी चीज़ है। तेरा वह स्वरूप है जो अभी तुझे दिखाया है। अपने स्वरूप की स्थिति में टिके रहना, पुनः जीव मत बन जाना।''

सारा शोर शराबा 'अहम' का है। सबसे पहले जब सृष्टि रची परमेश्वर ने, तो पहले मूल प्रकृति रची। यह दर्शन शास्त्र की बात है, आम समझ में आने वाली नहीं है कि आम व्यक्ति की समझ में आ जाये। उस मूल प्रकृति में तीन गुण थे – रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण। इसके अन्दर जो सबसे पहला प्रभाव आया, उसके अन्दर (मूल प्रकृति में) प्रकाश पकड़ने की शक्ति है। यह जो अपना दिमाग है, इससे अब हम बातों को पकड़ रहे हैं – फटा–फट। है तो जड़। यह कुछ भी नहीं है। इसमें से चेतन ज्योति निकल जाए तो इसे जला देते हैं कि किसी काम का नहीं रहा यह। अब सभी बातों को पकड़ रहा है। यह प्रकाश ग्रहण कर लेती है, होश ग्रहण कर लेता है। जब इसे होश आई तो इसके प्रकृति के, हर एक कण में यह बात समा गई द्व ड्डद्व 'मैं हूँ।' जब यह भाव आया तो चित बन गया। चिता ने उसी समय पाँच चीज़ें पैदा कर दीं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। इन्हें तन मात्राएं कहते हैं। इन तन मात्राओं से पाँच विषय पैदा हो गये, स्थूल भूत पैदा हो गये, सृष्टि बन गई सारी। ज्यों–ज्यों प्रकृति फैलती

गई – ग्यारह इन्द्रियाँ बन गई – दस इन्द्रियाँ तथा मन सहित। इस तरह यह संसार बन गया। अब Back to Source (पुन: मूल स्त्रोत तक) पर जाए तो हमारे छुटकारा हो सकता है। 'मैं' वास्तव में कोई चीज़ नहीं है यह भाव ही है कि 'मैं' हूँ। यह भाव ही छोड़ना है। यदि कोई व्यक्ति अभी समझ जाये, तो जन्म मरण अभी भी खत्म हो सकता है। फिर वह परमेश्वर बन जाता है, पर ऐसा सम्भव नहीं है, साध संगत जी! इसके लिये –

कबीर निरमल बूंद अकास की परि गई भूमि बिकार।
बिनु संगति इउ मांनई होइ गई भठ छार॥

पृष्ठ – 1375

महा ज्योति से सम्बन्ध तोड़ लिया इसने 'मैं' का चक्कर देकर। 'परम आपे' से 'निज आपा' बन गई। अब बेअन्त सियाने लोग गये हुए हैं, जिस दिन से संसार बना है, ऋषि, मुनि, साधु, सन्त, इसे बताते ही आ रहे हैं, पर निकाल नहीं सके, कामयाब नहीं हुए, कोई एक आध बचा लिया। सभी तो नहीं बच सके कि सारी दुनियाँ का उद्धार कर दिया, पर उन्होंने उठाकर रास्ते पर लगा दिया कि धीरे-धीरे चलते चलो, बारी आ ही जायेगी, फिर यह निर्मल बूँद, जीवन तत्व, चेतन तत्व जो 'मैं' बनकर अपने निज चेतन स्वरूप से गिर चुका है और जीव बन गया है। इससे और नीचे उतर कर साढ़े तीन हाथ की चेतन देह प्रतीत होती, नाम तथा रूप, सम्बन्धों वाली, लोभ की कोढ़ से रंगी, मोह की तारों में फंसी, अभिमान वश पाँच तत्वों की देह बन गया था। इस तरह चेतन, अमर, सदा आनन्द का रूप, पर दुखों में प्रवेश करवा दिया इसकी गलती ने, जो इसने अपने आपको जीव तथा देह मान लिया। 'मैं' खत्म कर दे तो सभी कुछ बन जायेगा। ये परम सूझ बूझ वाले वचन हुए हैं, इन पर विचार करो। जब अपने परम चेतन, अपने असली रूप, अस्तित्व की सूझ बूझ (ज्ञान) हृदय में समा गई तो समझो इसे नाम में निवास मिल गया। नामी के साथ अभेद हो गया। इसी लगातार सूझ जो निरोल, औंकार रूप है, को नाम कहा जाता है, मन्त्र और चीज़ है।

जब गुरू नानक साहिब सच खण्ड गये, वहाँ साकार रूप में परमेश्वर मिले, वचन वार्ता हुई और यह भी आदेश हुआ कि तू संसार में जाकर जो कार्य हमने कहा है, वही किया करना।

महाराज जी कहते हैं, ''आपकी जो मर्यादा है वह यह है कि जब तक गुरू धारण नहीं करता, तब तक कार्य नहीं कर सकता और मुझे संसार में कोई गुरू नहीं मिला –

बीजउ सूझै को नही बहै दुलीचा पाइ॥ पृष्ठ – 936

कहते हैं, ''इसलिये मैं आपको गुरू धारण करने आया हूँ'' –

आदि अंति एकै अवतारा।
सोई गुरू समझियहु हमारा॥ कबयो बाच बेनती चौपई

कई मूर्ख लोग कहते हैं कि गुरू नानक साहिब का गुरू 'सन्त रैण' था। जब खरा सौदा किया तो यही किया कि इनसे गुरू मन्त्र लिया। वास्तव में बात यह लिखी है कि जब गुरू नानक पातशाह साधुओं के पास राशन लेकर गये तो आपने कहा कि , ''महापुरुषो! राशन मैं ले आया बीस रूपयों का। बीस रूपये कौन से कम थे, बीस को दो सौ से गुणा कर दो, चार हज़ार का राशन ले आए। सन्तों की मण्डली काफी बड़ी थी। उन्होंने कहा, ''बेटा! हम सब कुछ कर लेंगे, अब तुम जाओ।'' बाद में साधुओं ने सन्त रेण जी को पूछा कि वह नूरी बालक राशन लेकर आया और आपने उसे बैठने भी नहीं दिया, तभी कह दिया जाओ।

सन्त रैण जी बोले, ''सन्त जनो! उनके अन्दर इतना जलाल और तेज़ था कि मैं सहन न कर सका। मैं ऊँचे स्थान पर बैठा था या तो मैं उनके चरणों में बैठ जाता, फिर तुम सभी को मुझ से ग्लानि हो जानी थी कि हमारा गुरू, एक बच्चे के चरणों में बैठ गया, इसलिये मैंने उसे जाने को कहा।

अब वह गुरू बन गया? पढ़कर तो देखे पहले साखी, बस, हाँ जी! सन्त रैण थे उनके गुरू। महाराज जी कहते हैं मेरा गुरू –

अपरंपर पारब्रहमु परमेसरु नानक गुर मिलिआ सोई जीउ॥

पृष्ठ – 599

मुझे तो गुरू भी परमेश्वर ही मिला है –

आदि अंति एकै अवतारा।
सोई गुरू समझिहु हमारा॥ कबयो बाच बेनती चौपई

अकाल पुरुष के पीछे ही हमें लगाया है। शबद क्या है? अकाल पुरुष का रूप है, चेतन शक्ति है। सो यहाँ पहुँचना हमारा लक्ष्य है।

मैं नाही प्रभ सभु किछु तेरा।
ईघै निरगुन ऊघै सरगुन केल करत बिचि सुआमी मेरा॥

पृष्ठ – 827

गुरू नानक साहिब ने कहा, ''सच्चे पातशाह! आपके साकार दर्शन तो मैंने कर लिये। अब मुझे अपने असली दर्शन करवा दो।'' कहते हैं, आगे चल।

महाराज सुन्न मण्डल में जहाँ तमोगुण प्रधान है, वहाँ से होकर जब निरंकार के देश में पहुँचते हैं और वहाँ जब अकाल पुरुष ने दर्शन दिये तो क्या देखते हैं कि कोई भी वस्तु यहाँ वाहिगुरू के बिना नहीं है।

उस समय उन्होंने अपना स्वरूप दिया –

1ओंकार सतिनाम करता पुरख निरभउ निरवैर
अकाल मूरति अजूंनी सैभं गुर प्रसादि॥

निरंकार जी कहते हैं, ''हे नानक! यह उपदेश तूने जाकर देना

है। संसार भूल गया, कोई शिवजी को मानता है, कोई ब्रह्म को मानता है, कोई विष्णु जी को मानता है। ये तो मेरी त्रिगुणी माया के मुख्य देव हैं। माया की उच्चतम शक्तियाँ हैं। मैं नहीं हूँ।''

हिन्दुस्तान तो सारा ही भूला हुआ था। अभी भी मानते हैं, अभी कौन सा मानने से हट गये हैं? मुसलमानों ने भी बहुत जोर लगाया कि देवताओं को मत मानो, खुदा को मानो, पर वे खुदा को मानने वाले मैखिक बातें करते थे, खुदा को पहचाना नहीं था – उन्होंने। यदि पहचान लेते तो चरखड़ियों पर न चढ़ाते अंग–अंग न काटते। पहचान नहीं थी, यह बात कहने के लिये ही बताई हुई थी उन्होंने, इधर इनकी भावना थी और बहुत अच्छी भावना थी। गुरमत ने घेरा बना दिया कि जितनी शक्तियाँ हैं, इन्हें अलग–अलग मत करो। विष्णु जी की शक्ति भी परमेश्वर की शक्ति है, ब्रह्मा जी की शक्ति भी परमेश्वर की शक्ति है तथा अन्य जितनी भी शक्तियाँ हैं, सभी परमेश्वर की शक्तियाँ हैं, कहते हैं झगड़ों में मत पड़ो। तुम अकाल पुरुष तक पहुँचो जो इन सभी का मालिक है। आप नीचे वाली शक्तियों को न मानकर, उस ऐकंकार को मानो, आदर सभी का करो। नफरत की पहुँच धर्म तक नहीं है। वह भी उसी के बनाये हुए हैं। नफरत किस बात से? अपने आप को सम्भाल कर रखो। सर्व ज्योति परमेश्वर की ही, सभी रंगों, यौनियों, जातियों में सभी अस्तित्वों में पसरी हुई है –

निरंकारु आकार करि एकंकारु अपार सदाइआ॥

भाई गुरदास जी, वार ख्/ख

जब निरंकार ने जो सभी कुछ स्वंयमेव ही है, जब उसने अपना आकार सजाया, बनाया तो उसका नाम पड़ गया ऐकंकार।

पारावार से बाहर जिसका कोई अन्त न पा सके। अब यहाँ पर थोड़ा सा अन्तर पड़ गया, हमारे तथा प्राचीन शास्त्रों में वह यह है कि वे कहते हैं ईश्वर हुआ है। वह ईश्वर को कर्ता कारण समरथ नहीं मानते। कहते हैं, उसे प्रकृति की जरूरत थी। माया पहले ही थी, जो ईश्वर हुआ था उसने माया की सहायता से संसार रच दिया क्योंकि वह सर्वकला समरथ था।

अब ऐकंकार ने संसार की रचना कैसे की? गुरू दसवें पातशाह कहते हैं –

प्रथम ओअंकार तिन कहा॥

सबसे पहले जो शबद उच्चारण हुआ वह औंकार का हुआ –

ओअंकारि ब्रहमा उतपति।

ओअंकारु कीआ जिनि चिति।

ओअंकारि सैल जुग भए।

ओअंकारि बेद निरमए॥ पृष्ठ –930

इस औंकार को नाम कहते हैं। यह नाम शक्ति है, नाम धुन है। इस नाम से सारे जीव जन्तु, खण्ड ब्रह्मण्ड जो भी है नाम से पैदा हुए हैं –

नामै ही ते सभु किछु होआ॥ पृष्ठ – 753

सो वह दे दिया अकाल पुरुष ने गुरू महाराज जी को मूल मन्त्र। हम कहते हैं कि मूल मन्त्र का पाठ करो। यह मूल मन्त्र कोई मामूली सी चीज़ नहीं है। यह वही मूल मन्त्र है जो अकाल पुरुष ने गुरू नानक साहिब को दिया है। यदि हमें इसके भाव समझ में आ जायें तो हम ऐकंकार में चले जाते हैं। उन्होंने कहा कि, ''हे नानक! इससे अब तू अपनी बाणी रच कर ला।'' अब गुरू नानक साहिब जो कुछ आखों से देखकर आये थे जिस निरंकार के रूप के दर्शन नेत्रों से किये थे, साकार के बाद वह थे, यहाँ और कोई नहीं, वह स्वंयमेव ही है। उन्होंने कहा हे प्रभु –

आदि सचु ....॥ पृष्ठ – 1

तू ही था पहले और कोई नहीं था –

.... जुगादि सचु॥ पृष्ठ – 1

युग बनते समय काल (समय) जब बना, उस समय भी तू ही था और कोई नहीं आया, न कोई प्रकृति आई है, न कोई माया आई है, तू ही तू है। तूने ही एक से अनेक होकर बेअन्त रूप धारण कर लिये –

एक मूरति अनेक दरसन कीन रूप म् अनेक॥
खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिर एक॥

अकाल उसतति

मैं लाँसएंजलस गया। वहाँ पर दीवार पर लिखा हुआ था – 1ओंकार (एक औंकार) अग्रेजी में लिखा हुआ त्रश्स्त्र द्वह्य श्ठ्ठद्र (परमात्मा एक है)। मैंने कहा, पढ़े लिखे लोग हैं, नये स्थान पर आए हैं। कुछ बड़े खरड़ (तर्क वितर्क करने वाले) ज्ञानी भी बैठे होते हैं। मैंने कहा यह जो तुमने दीवार पर लिखा हुआ है, यह गलत है, ''प्यारे! यह इस तरह नहीं है, अर्थ के अनर्थ मत निकालो। आप विदेश में आए हुए हो? मुझे इस दुनियाँ में बता दो कि यहाँ दो कौन हैं? कोई भी बता दो तुम्हारी सारी संगत में से कि अमुक चीज़ें दो हैं। एक भैंस ले लो, उसके साथ का दूसरा नहीं है, मनुष्य नहीं है। एक पन्छी ले लो, उसके साथ का दूसरा नहीं है, मनुष्य को देख लो, उसके साथ का दूसरा नहीं है, एक ही केवल एक है सभी कुछ फिर परमात्मा भी एक है। परमात्मा को कौन कहता है कि दो हैं? जब हम एक है वरियाम सिंघ कोई है ही नहीं। निकाल कर दिखो दो, सारी दुनियाँ में से यदि मिल भी जाये? वह तो यही है जो आपके साथ वचन कर रहा है।'' मैंने कहा कि सारी दुनियाँ ही एक है। अकेले परमात्मा को तुमने कौन सा बड़प्पन दे दिया कि परमात्मा एक है। मैंने

कहा, ''सुनो, ध्यान से। सारा दर्शन शास्त्र जितना भी है गुरू ग्रन्थ साहिब का, जब कुछ लिखा जाता है तो subject विषय पहले लिखा जाता है। आप कोई प्रार्थना पत्र भेजते हो सरकार को, ऊपर लिखते हो विषय। पुस्तक में लिखा जाता है कि इसमें तुम्हें पढ़ने को क्या मिलेगा? विषय कहते हैं उसे। विषय क्या है, गुरू ग्रन्थ साहिब का? इसे कौन पढ़ सकता है? कौन अधिकारी है? ये दो चीज़ें न ही यहाँ आती हैं। अर्थ हम पढ़ते हैं - बेअन्त। पर वे अर्थ और हैं, ये अर्थ और हैं जो मैं बताता हूँ। गुरू नानक साहिब ने कहा -

''हे प्रभु! तू स्वंय ही है यहाँ पर और कोई नहीं। अब जो खेल चलती है, हम मानते ही नहीं कि वाहिगुरू स्वंय ही है। यदि हमें ज्ञान हो गया वेदान्त का तो हम कहेंगे - 'अहम ब्रह्मस्मि' मैं ही खुदा हूँ, 'अनहल हक बिगो।' मैं ही खुदा हूँ। उस खुदा को हम नहीं कहते, इस शरीर में जो मैं हूँ उसे कहते हैं। फिर देख लो सजाएं कितनी मिलीं उन्हें? कृष्ण महाराज जी ने जिस समय कहा, ''मैं पारब्रह्म परमेश्वर हूँ।'' उस समय कृष्ण महाराज शरीर को नहीं कह रहे थे, वास्तविक बात कह रहे थे। मेरी प्रकृति, माया के पीछे रहकर 'मैं' काम कर रहा हूँ, वह कृष्ण नहीं था। उस समय उन्होंने ब्रह्म की बात कही है। हम नहीं कर सकते क्योंकि हमारी 'मैं' नहीं टूटी, अभी निम्न स्तर पर बैठे हैं। हमने तो अभी पहला ही अक्षर समझा है -

आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु॥ पृष्ठ - 1

हमने पहले मूल मन्त्र ही नहीं समझा, बहुत बड़े ज्ञानी बने फिरते हैं, कथाकार बने फिरते हैं, अभी कुछ भी नहीं पता चला हमें। हम लोगों को धोखा देते हैं, अपने आप को धोखा दे रहे हैं। महाराज जी कहते हैं जैसे तेली का बैल घूमता है, इसी तरह से पैड़ में घूमते हैं। इसके नेत्रों पर चपड़े के खोपे लगे हुए हैं, इसे पता ही नहीं चलता, हमारी भी समझ में नहीं आता क्योंकि इस जीव ने साधन नहीं किये, गुरू नहीं धारण किया। 'गुर परसादि' लिखा हुआ है यहाँ। जब तक गुरू धारण नहीं करता, तब तक इसे पता नहीं चलता, बातों का ज्ञानी, जितना मन चाहे बन जाये, यह यथार्थ ज्ञानी नहीं है, मुख ज्ञानी है। मुख ज्ञानी को महाराज जी ने मुर्दा कहा है -

अति सुंदर कुलीन चतुर मुखि डिआनी धनवंत।
मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नहीं भगवंत॥
पृष्ठ - 253

यदि प्यार नहीं पड़ा अभी तक, वाहिगुरू जी के साथ, फिर यह मरा हुआ व्यक्ति है। हमें तो जीवन भी नहीं मिला, हम बने फिरते हैं - बड़े-बड़े ज्ञानी, सन्त बने फिरते हैं। हर एक पर यह बात लागू होती है, मैंने बहुत खोज की है, 'मैं' तो स्वंय ही नहीं हूँ, दूसरों को क्या कहना। महाराज जी (श्री सन्त ईश्वर सिंघ जी राड़ा साहिब) वाले मुझे मिले थे। जिन अवस्थाओं की मैं बात करता हूँ, वह थी इनके अन्दर, क्योंकि मेरा बचपन से ही तर्कशील मन है। कोई बात मैंने नहीं मानी, जब तक अनुभव में मेरे खरी नहीं उतरी, ऐसे ही नहीं लोगों के कहने पर मान गया। मैं तो महाराज जी के पास जाता ही नहीं था, सत्रह वर्ष की आयु थी मेरी। मैंने देख लिया बाहर कि बड़े सुन्दर कपड़े पहने हुए हैं, आगे का मुझे भी ज्ञान नहीं था अभी। वह महापुरुष उस बात को ताड़ गये। वह अन्दर जाकर बैठ गये। हमारे माता जी कहती हैं, ''तू दर्शन करने आया है, दर्शन कर ले।

मैंने कहा, ''कर लिये बाहर आते ही।''

वह फिर आई, तीसरी बार फिर आई।

महाराज जी कहते हैं, ''क्या बात है, माता बार-बार खड़ी होती हैं?''

कहती है, ''मेरा लड़का है तो अच्छा, पर अन्दर नहीं आ रहा।''

कहते हैं, ''जा ले आ।'' वह मुझ से तीन चार गुणा ताकतवर थी, मुरबे वालों की बेटी थी।''

मुझे मारा जोर से, झटका। माँ ने मुझे खींच लिया। एक गड्ढा सा था, मैंने उसमें हाथ डाल दिया। उसने फिर झटका लगाया पर मैं खिंच न सका। कहती है, ''पतले से में कितना जोर है?'' उसने फिर मज़बूती के साथ झटका मारा और मुझे खींच लिया और खींचती हुई सन्तों के पास लेकर चली गई। मैंने कहा, ''अब तू मेरी बाजू तो छोड़ दे, सभी लोग देखेंगे।''

मैं गया, जाकर नमस्कार की और खड़ा हो गया।

महाराज जी ने देखा कहते हैं, ''तू कौन है?''

मैं चुप, वहाँ काफी सारी संगत बैठी थी, मुझे कहते हैं ''काके तू जवाब क्यों नहीं देता?''

मैंने कहा, ''देता हूँ।''

कुछ मिनट के बाद महाराज जी ने फिर कहा, ''तू कौन है?''

मैं फिर भी चुप। वे सभी हंस पड़े। आपस में बातें करने लग पड़े कि, ''लो इसे, यह भी नहीं पता कि मैं कौन हूँ?''

महाराज जी कहते हैं, ''खामोश! तुम्हें नहीं पता कि क्या बात हो रही है?''

महाराज जी बहुत गम्भीर हो गये, उनके नेत्र एकदम किसी रस से भर आए, जलाल में आ गये। मेरी ओर देखने लगे, तीन मिनट बीत गये। यदि कोई तीन मिनट आकर खड़ा रहे तो तुम भी सभी कहोगे कि लो, बताता ही नहीं कि मैं कौन हूँ?

संगत में से फिर आवाज़ आई कहते हैं, ''काका, तुझे पूछा है

कि तू कौन है, तू बताता भी नहीं।''

महाराज जी कहते हैं, ''चुप, खामोश! तुम्हें नहीं मालूम की क्या बात हो रही है?''

मुझे कहते हैं, ''बताया नहीं?''

मैंने कहा, ''महाराज! मैं क्या बताऊँ? मुझे बताना नहीं आता कि मैं कौन हूँ?''

सारी संगत हस पड़ी।

महाराज जी ने पूछा, ''कैसे नहीं बताना आता?''

मैंने कहा, ''महाराज! यदि तो मैं अपना नाम बताता हूँ कि मैं वरियाम सिंघ हूँ।''

तीन चार साल बचपन में मेरा नाम और कुछ था। अमृतपान मुझे करवा दिया था, जब मैं तीन साल का था। मेरा नाम वरियाम सिंघ हो गया, उससे पहले का नाम कोई और था, पर मुझे कई साल बाद भी उसी नाम से बुलाते रहे। मैंने कहा, ''मैं ऐसे कह देता हूँ कि पाँच साल मेरा नाम वही रहा और अब ग्यारह सालों से यह है। मैंने कहा, ''नाम तो मेरा है, आपने पूछा 'मैं' कौन हूँ?''

दूसरा मैंने सोचा कि यदि मैं पंगत में बैठा होता और मुझे पूछते फिर मैं अपनी जाति बताता। अन्धेरे में आकर यदि मैं दरवाजा खटखटाता और मुझे पूछते तू कौन है? तब मैं अपना नाम बताता। अन्धेरा हो रहा होता, आप मुझे पूछते तू कौन हैं तो मैंने कहना था, ''जी, लड़का हूँ।'' अब चारों ही बातें यहाँ पर नहीं हैं आप मुझे पूछ रहे हो ''तू कौन है?''

मैंने कहा, ''महाराज! इस जन्म का तो मैंने आपको बता ही दिया। यह मैं नहीं था, मेरा नाम था। पहले जन्म में मेरा नाम हरनाम सिंघ था। इससे पहले का जन्म मुझे पता है पर नाम का नहीं पता क्या था? आप इस भैणी को अब उलटा घुमा दो और अब वहाँ पहुँच गये जहाँ पहले दिन मेरा अस्तित्व हुआ है। मुझे यह बताना नहीं आता। किसी न किसी दिन मैं अस्त्वि में आया हूँ, मैं बना हूँ। मैं स्कूल में पढ़कर आया हूँ मैंने कभी सुनी नहीं यह बात।

महाराज जी कहते हैं, ''बैठ जा।'' नेत्र बन्द कर लिये आपने ब्भ मिनट तक खोले ही नहीं। सारी संगत हैरान कि यह लड़का क्या आ गया, सारे वचन रह गये आज हमारे। मैं भी वैसे ही बैठा रहा।

महाराज कहते हैं, ''नेत्र खोल।''

संगत को कहते हैं, ''इस लड़के पर तुम हस रहे थे। आज पहले दिन हमें एक सुहागन के साथ मेल हुआ है, बाकी तो वेश्याएं ही मिलती रही हैं - अब तक। बेशक यह अभी बच्चा ही है।'' कहते हैं, ''कोई भी दुनियाँ में नहीं बता सकता।''

महाराज जी की उस समय फ वर्ष की आयु थी। मुझे कहते हैं, ''बेटा! इसे कोई भी नहीं बता सकता पर इसका नाम रखा गया है, इसे जीव आत्मा कहते हैं। तुझे और भी आसान सा बताते हैं हम। उस पहले दिन से यदि तू थोड़ा और पीछे को सुरत ले जाकर देखे, जब तू था ही नहीं, उस समय परमात्मा ही था और कोई नहीं था, स्वयंमेव ही था। उसके अन्दर से हुम्म से तेरा अस्तित्व कायम हुआ, एक घेरा बन गया 'मैं' का और 'मेरी' का इसे जीव आत्मा कहने लग पड़े। अब तू ऐसे कर, जीव को परे कर दे और आत्मा है तू।''

पहले दिन ही ज्ञान दे दिया, वह मेरे भी हृदय के अन्दर चला गया उपदेश। मैं फिर घर आया और आते ही चला गया। मस्तुआणे चला गया, वहाँ से फिर आगे कहीं म महीने न लौटा जाकर जंगल में बैठ गया, मानसा की ओर। वह स्वरूप सामने आ गया कि मैं तो हूँ ही नहीं, मेरी तो मनौत ही गलत है, यह तो आत्मा है, सभी जगह आत्मा है -

> ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणीऐ एकु एकु वखाणीऐ।
> आतम पसारा करणहारा प्रभ बिना नही जाणीऐ॥

पृष्ठ - 846

यहाँ तो वाहिगुरू स्वंय ही खेल रहा है। छह महीने के बाद महाराज जी गाँव धमोट में आए। वहाँ पर आते ही उन्होंने पूछा कि वरियाम सिंघ कहाँ गया है? वे दिन बहुत अच्छे हुआ करते थे कोई ढूँढने नहीं जाया करता था। मैं बैठा था, सौ मील की दूरी पर तथा मानसा से परे 'जवारके' गाँव है, उसके दूसरी ओर एक त्रिकोण सी नहर तथा खाले (छोटा नाला) में बीच में जगह थी, वहाँ पर बहुत टीले थे रेतीले। दो नाले बहते थे, वहाँ पर करील उगे हुए थे और करीलों में, मैं बैठता था। एक समय रोटी खा लेता। महाराज जी अर्न्तध्यान हुए, मुझे आ मिले। मिले कैसे? मेरी सुरत चढ़ी हुई थी। उस समय मैं अकाल उस्तति कर रहा था, सुरत के साथ। उन्होंने आकर काट दी, एक दम, मैं नीचे आ गया। हैरान हो गया, मैंने कहा कि यह क्या हो गया? दूसरी बार मैंने फिर सुरत चढ़ा ली, वह फिर काट दी। मेरी नब्ज़ तेज़ हो गई, बहुत ज्यादा। मैं कहूँ कि यह क्या हो गया है, दिल मेरा धक-धक करने लग पड़ा। मैंने कहा कि मुझे कोई अपनी ओर खींच रहा है। कौन खींच रहा है? इसका मुझे पता न चल सका। बारह बजने में अभी कुछ मिनट शेष थे, मेरे पास कोई और चीज़ तो थी नहीं, बस एक कछहरा होता था, एक परना (साफा) होता था। कुर्ता धो लिया करता था जब मैला हो जाता था। बहुत अधिक पसारा तंग करता है। मेरे पास ही था कछहरा भी और साफा भी। वह मैंने कमर पर बान्ध लिया। फिर मैं भागा वहाँ से, अढ़ाई मील दूर था स्टेशन। मैं दौड़ता ही चला आया।

वहाँ पहुँच कर गाड़ी में बैठ गया। मेरे पास सवा रूपया था। बाबू से कहा कि, ''मेरे पास सवा रूपया है, टिकट मुझे गाड़ी मैं ही पकड़ा देना।'' वह भी कोई भला व्यक्ति था, उसने मुझे बाकी पैसे भी पकड़ा दिये और टिकट भी। कूप स्टेशन पर आकर मैं उतर गया। बड़ी तेज़ी से जैसे कोई ज़न्जीर डाल कर खींचता है। सीधा ही मैं गाँव आया, उन दिनों पैदल चलने का बहुत अभ्यास हुआ करता था। ऐसे ही चले जाया करते थे – दस कोस। गिनते ही नहीं थे कि बीस कोस (मील) है, पन्द्रह मील है, बस चल पड़ते थे। जब मैं आया तो एक पण्डित मिला चेत राम।

मुझे कहने लगा, ''अरे वरियाम सिंघ! तू कहाँ से आया है आज? तुझे तो देखा ही नहीं, किधर चला गया था?''

कहता है, ''राड़े वाले सन्त आए हुए हैं।''

मैंने कहा, ''कहाँ है?''

कहता है, ''गुरूद्वारे दीवान सजा हुआ है।''

मैंने घर क्या जाना था, सीधा ही दीवान में चला गया। महाराज जी ने नेत्र खोले और मुझे इशारा किया कि इधर ही बैठ जा सामने, आगे।''

मैं वहीं बैठ गया। दीवान की समाप्ति हुई। आप कहने लगे कि आज हमारे साथ किसी ने नहीं जाना। मुझे कहते हैं, ''लोटा, तू पकड़ ले।'' अर्दली से लोटा ले लिया। कहते हैं, ''हमारे साथ तुम्हारे में से कोई नहीं जायेगा।'' सारे सेवक तथा अन्य प्रेमी सभी पीछे ठहर गये।

नहर धमोट के पास से ही गुज़रती है, नहर पर चले गये, आगे–आगे महाराज जी चलते गये, थोड़ी दूर एक सुहावना स्थान आ गया। कहते हैं, ''यह जगह बैठने के लिये सुहावनी है।''

मैंने कहा, ''हाँ, महाराज।''

मेरे पास कुछ नहीं था। बिछाने के लिए उनके पास भी कुछ नहीं था। हम वहीं पर, घास पर ही बैठ गये।

कहते हैं, ''अब बता! कहाँ था तू?''

मैंने कहा, ''महाराज! मैं आपके पास आने के बाद मस्तुआणे चला गया, वहाँ से फिर काले की कमालपुर चला गया। वहाँ सन्त शमशेर सिंघ एक तपस्वी थे, वह डेढ़ बजे उठ जाते थे। कपड़ा मेरे पास भी कुछ नहीं था, उसके पास भी नहीं था, पौष का महीना था। सोता मैं भी नहीं था, ठण्ड तो लगती थी, अब नींद कहाँ से आ जायेगी? वह तपोस्थान में बैठ जाया करते थे, वह भी नाम जपते थे और मैं भी नाम जपता था। दिन में मैं टीलों में जाकर नाम जपा करता था। वह मुझे ढूँढता रहता कि रोटी तो खा जाया कर। फिर मैंने सोचा कि वे मुझे रोटी के लिये ढूँढते रहते हैं, मैं वहाँ से ५–७ मील और आगे चला गया। मानसा से पार निकलकर मुझे एक झड़ी सी पसन्द आई, मैं उसी के अन्दर बैठ गया, तीन महीने वहाँ बैठा रहा।

महाराज जी हस पड़े।

मैंने कहा, ''आपने मुझे खींचा था?''

कहते हैं, ''हाँ।''

सौ मील की दूरी से मुझे ऐसे खींच लिया जैसे रस्सा डाल कर खींचा जाता है। यह बात मैंने तुम्हें इसलिये बताई है इतनी बड़ी, कि उस आयु में आप बिल्कुल पूरे थे, ब्रह्मज्ञानी थे, पूर्ण ज्ञान था। वह बातों के ज्ञानी नहीं थे, पूर्ण सर्व शक्तिमान थे, मुझे वहाँ बैठे हुए को खींच लिया। मेरे अन्दर भी कुछ तो होगा ही, मैंने इतना तप किया था पर उन्होंने ऐसे खींच लिया रस्सा डालकर। मैं रुक ही न सका।

सो मैं यह तो कहता हूँ कि हर एक सन्त, सन्त नहीं होता प्यारे! यह बात बहुत ही कठिन है। नाम रख लेते हैं सन्त अमुक सिंघ, मत कहा करो, भाई साहिब कह दिया करो। भाई भी बड़ा कठिन है कहलवाना। सिंघों ने नाम हैं, सरदार कहलवाओ। मैंने तो आज तक सरदार ही कहलवाया है, यहाँ पर ही मुझे सन्त कहने लग पड़े सभी। पहले तो मैंने बहुत कहा, मना किया Resist किया कि मैं टाई लगाता हूँ, सूट पहनता हूँ, सरदार कहा करो क्योंकि भाई साहिब तो भाई रणधीर सिंघ जी ही थे। मैं तो किसान था। नाम रख लिया सन्त। अब मैं क्या करता, मैं अकेला, इधर सभी।

सो महाराज जी ने कहा कि सारी ज़िन्दगी में यह पतली सी रेखा है 'मैं' की यदि तो इसे पार कर गया फिर तो जीत गया, यदि मोह माया ने तुझे पार न करने दिया तो फिर अगला जन्म लेना पड़ेगा तुझे, मैंने आपके चरणों में प्रार्थना की है कि अब इतनी बात तो समझो, इनके भावों को –

मैं नाही प्रभ सभु किछु तेरा॥ पृष्ठ – 827

गाने के लिये तो हम गा लेते हैं, कहने को कह लेते हैं, कथा कर लेते हैं, रट लेते हैं, दूसरों की बातें नोट करके बताते हैं पर आप तो हम 'मैं' के अन्दर खड़े हुए हैं। सो इसलिये इस बात को समझना चाहिए। जब तक यह बात समझ में नहीं आती, तब तक जन्म मरण का चक्कर कभी खत्म नहीं होगा। ऐसे ही प्रार्थनाएं करते हैं कि, ''महाराज! इसे अपनी दरगाह में वास दीजिये।'' महाराज जी कहते हैं, दरगाह में वास लेना इतना आसान नहीं है। इसका भी हम तुम्हें बता देते हैं कि दरगाह में कौन वास करता है –

अंतरि गुरु आराधणा.................॥ पृष्ठ – 517

जो हर वक्त परमेश्वर की आराधना करता है, कभी नहीं भूलता –

.................जिहवा जपि गुर नाउ॥ पृष्ठ – 517

जिभ्या के साथ वाहिगुरू-वाहिगुरू, राम-राम, अल्लाह-अल्लाह कोई जप लो। उसके पास ऐसी बातें नहीं हैं कि कौन है, कौन नहीं, वहाँ पर 'मैं' जाता ही वही है जो 'कौन' मिटा दे। जिसके मन में है कि मैं 'अमुक' हूँ, वह नहीं जाता दरगाह में। दरगाह में वही जाते हैं जो खालस शुद्ध होते हैं -

नेत्री सतिगुरु पेखणा................ ॥ पृष्ठ - 517

अब यह बात सभी बातों से कठिन है। सतगुरू है वाहिगुरू का रूप -

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।
गुर गोविंदु गोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥

पृष्ठ - 442

अब इसका भेद गुरू तीसरे पातशाह ने खोला। कहते हैं -

ऐ नेत्रहु मेरिहो हरि तुम महि जोति धरी
हरि बिनु अवरु न देखहु कोई।
हरि बिनु अवरु न देखहु कोई नदरी हरि निहालिआ।
एहु विसु संसारु तुम देखदे एहु हरि का रूपु है
हरि रूपु नदरी आइआ॥ पृष्ठ - 922

जिधर भी तुम्हारी नज़र जाती है, परमेश्वर ही परमेश्वर है। खुले नेत्रों से दर्शन होते हैं। यह समुच्चता जो है यह वाहिगुरू है। इसे पूरी तरह सच समझो पर जब अलग-अलग कर लेते हैं तो फिर इनके नाम वृक्ष-वृक्ष है, भैंस-भैंस है, साँप-साँप है, आदमी-आदमी है। यदि समुच्चय निश्चय किसी का आता है तो महाराज जी कहते हैं -

एहु विसु संसारु तुम देखदे एहु हरि का रूपु है
हरि रूपु नदरी आइआ॥ पृष्ठ - -922

नदर आ गया हमें, परमेश्वर का रूप है। बातों का ज्ञानी यहाँ नहीं पहुँच सकता, बहुत मुश्किल है। एक महात्मा थे, जहाँ हमारे फार्म थे। मुझे पता चला कि डाकुओं ने मारा उन्हें, वह कैमरी रहा करते थे। मैं वहाँ चला गया। वह कबीर पन्थी थे।

मैंने कहा, "सन्त जी! क्या हाल है?"

कहते हैं, "बहुत बढ़िया है।"

मैंने कहा, "सुना था...........।"

कहते हैं, "हाँ, हाँ, तुझे पता चल गया।"

मैंने कहा, "क्या हुआ था?"

कहते हैं, "भगवन आए थे, उनका रूप और था, आपका रूप और है, जो दूध आदि लाते हो उनका रूप और है पर उनका और था।"

मैंने कहा, "भगवन थे?"

कहते हैं, "हाँ।"

मैंने कहा, "वे तो डाकू थे।"

कहता है, "नहीं, नहीं ऐसे मत बोलो, वे तो भगवन थे।"

मैं बोला, "उन्होंने क्या कहा?"

वह बोले, "जो कुछ है दे दो।" मैंने कहा, "भगवन। आप का ही सब कुछ है, मैं तो कहीं ताला ही नहीं लगाता, दरवाज़े खुले हैं भगवन। जो चाहिए ले जाओ। भगवन के हाथ में डण्डी थी और वे मारने लग गये, बहुत प्यार किया।" ऐसे नहीं कहा कि मारा मुझे, बल्कि कहते हैं, "प्यार किया।"

कहने लगा, "मैंने कहा भगवन। आज आपने दर्शन दिए हैं।"

मैंने कहा इस सन्त का तो किसी को पता ही नहीं, यह तो चौथे पद में रहने वाला सन्त है। जो चोर तथा साधु को ब्रह्म पहचानता हो, साँप और शेर को ब्रह्म पहचानता हो, वह पहुँचा हुआ सन्त होता है।

मैं अन्दर घुसने लगा, जहाँ से डाकुओं ने दीवार तोड़ी थी, मैं देखना चाहता था।

कहने लगे, "अन्दर भगवन पड़े हैं, उन्हें कोई कष्ट न होने पाए।"

मैंने जब अन्दर झांक कर देखा, वहाँ साँप पड़ा था और सीधा लम्बा पड़ा था। मैंने कहा कि यह तो वास्तव में ही अति महान पूज्य महात्मा हैं।

मैंने पूछा, "सन्त जी! यह साँप जो यहाँ पर पड़ा रहता है, फिर आप कहाँ सोते हो?"

बोले, "मैं भी वहीं पर सो जाता हूँ।"

मैंने कहा, "भगवन कुछ नहीं कहता?"

कहने लगे, "कभी छाती पर आ जाते हैं, कभी मेरे साथ लेट जाते हैं।"

मैंने कहा, "जब सुबह उठते हो। फिर क्या होता है?"

कहने लगे, "मैं आवाज़ लगाता हूँ। भगवन! अब मैंने आपका भजन करना है। आप थोड़ा मुझे उठने दो। वह आवाज़ सुनकर एक तरफ हो जाता है, फिर मैं धीरे-धीरे देखता हूँ कि कहीं पैर के नीचे न आ जाए।"

मैं हैरान रह गया, उसकी वृति देखकर कि ऐसे ही झोंपड़ी में रहता है, महात्मा उच्च कोटि का है, बहुत ऊँचा पहुँचा हुआ, जब तक ऐसी वृति नहीं आती, बातों का तो हर कोई ज्ञानी है-

गली हउ सोहागणि भैणे कंतु न कबहूं मै मिलिआ॥

पृष्ठ - 433

बातों के तो हम ब्रह्मज्ञानी हैं पर यह अवस्था नहीं आई अभी, जहाँ पर यह कह दें कि -

मै नाही प्रभ सभ किछु तेरा॥

यह अवस्था नहीं आती। जब तक इसका भेद समझ में नहीं आता। मैंने यह बहुत ऊँची बात की है। सो आप सभी आए हो

सावण महीने की सक्रान्ति मनाने के लिये। यदि हम नीचे से बात को समझने की कोशिश करें तो बात बन सकती है, बाहर से ज्ञान जितना मर्ज़ी इकट्ठा कर लो क्योंकि ज्ञान नहीं होता उपासना के बगैर। उपासना के अनेक भेद हैं। एक अन्तरंग है, एक बहिरंग है। अन्तरंग के भी अनेक भेद हैं। सन्तों के बिना कोई नहीं बता सकता, भटकता फिरता है आदमी। जो उपासना, एकाग्रता, समाधि सहज समाधि में से पार हो चुके हैं, उन्हें पता है, वे बताया करते हैं - धीरे-धीरे teachers (अध्यापकों) की तरह, अब तू ऐसे चल, अब ऐसे चलना है। कर्म बिना उपासना कभी नहीं आयेगी। कर्म का ज्ञान नहीं होता - नाम के बिना। नाम नहीं मिलता - गुरू के बिना। गुरू से ही बात शुरू होती है और गुरू पर ही जाकर समाप्त होती है।

इसलिये यदि ज्ञान तक पहुँचना है तो नीचे से शुरू करना पड़ेगा। गुरू धारण करना पड़ेगा। गुरू के पास है - नाम -

बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ बुझहु करि वीचारु।
नानक पूरै भागि सतिगुरु मिलै सुखु पाए जुग चारि॥

पृष्ठ - 649

गुरू से हमें मन्त्र मिलता है। मन्त्र की फिर हम साधना करते हैं। यह साधना करना सबसे कठिन होती है।

गुरू नानक पातशाह जी को माता जी ने कहा, ''पुत्र! बाहर से आया है तू, कोई बात-चीत, हाल-चाल सुना।''

महाराज जी कहते हैं, ''फुर्सत नहीं है, माता।''

कहती है, ''क्यों?''

महाराज बोले, ''हम नाम में रहते हैं, परमेश्वर में रहते हैं, क्या बातें करेंगे?''

कहती है, ''यदि बातें कर लोगो तोक्या हो जायेगा?''

कहने लगे, ''यह नाम जीवन है हमारा -

आखा जीवा विसरै मरि जाउ॥ पृष्ठ - 9

धारना - आखा जीवां विसरे मर जावां - 2, 2
आखा जीवां विसरे मर जावां - 2, 2

जिउ मछुली बिनु पाणीऐ किउ जीवणु पावै।
बूंद विहूणा चात्रिको किउ करि त्रिपतावै।
नाद कुरंकहि बेधिआ सनमुख उठि धावै।
भवरु लोभी कुसम बासु का मिलि आपु बंधावै।
तिउ संत जना हरि प्रीति है देखि दरसु अघावै॥

पृष्ठ - 708

आखा जीवा विसरै मरि जाउ॥ पृष्ठ -9

कहने लगे, ''माता! नाम प्रभु का ऐसा है कि वह जीवन है। जिसके अन्दर नाम का कण नहीं है -

अति सुन्दर कुलीन चतुर मुखि डिआनी धनवंत।
मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नही भगवंत॥

पृष्ठ - ख्र्भ्फ

वह तो मृत है। जीवन ही नाम है माता। कबीर साहिब की माता बातें करती है देवरानियां-जेठानियों के साथ, ''यह देखो कबीर ने क्या काम हाथ में लिया है? सारे काम बुनना तनना छोड़कर परमात्मा से प्रीत लगा ली। यह क्या कमाएगा? बच्चे हैं, घर वाली है। इसे पूछो तो सही।''

वह कहने लगी, ''कबीर! यह बात तो माँ की ठीक है, बच्चे पालने हैं और तू राम-राम कहे जाता है।''

कबीर बोले, ''माताओ! राम मेरा जीवन बन चुका है। मैं राम को भूलना नहीं चाहता, एक मिनट के लिये भी।''

कहती हैं, ''कितना समय?''

कहते हैं -

जब लगु तागा बाहउ बेही।
तब लगु बिसरै रामु सनेही॥ पृष्ठ - 524

वह तो मेरा जीवन है। यदि मैं मुँह से हवा खींच कर नाल में धागा डालकर फूँक लगाकर खींचता हूँ - सुट्टा मार कर तो उस समय तो मेरे से राम कहा नहीं जाता।''

अब देखो यहाँ उनके और हमारे जीवन में कितना अन्तर है। हम सारा दिन भूले ही रहते हैं। वह कहते हैं कि यदि मैं अन्दर को सुट्टा भी लगाता हूँ तो मुझे राम भूल जाता है। फर्क हुआ न बहुत ज्यादा? तभी उन्हें सन्त कहते हैं -

जिना सासि गिरासि न विसरै हरि नामां मनि मंतु।
धंनु सि सेई नानका पूरनु सोई संतु॥ पृष्ठ - 319

सन्त की पदवी परमात्मा जैसी होती है। ऐसे ही सन्त-सन्त बहुत हो-हल्ला होता है। यहाँ पर आने के बाद थोड़ा सा पता चलता है, बाहर पता चलता है अमेरिका, कैनेडा, इंगलैण्ड कि अमुक सन्त आया है, अमुक सन्त ने आना है। टैलिफोन किये जाते हैं कि भाई! मैं आपके इलाके का हूँ, मुझे स्रस्रह्लद्दह्यह्य पता दे दो, कि मैं कितने बजे आऊँ? अपने आप ही जाते हैं बिना बुलाए -

चेले बैठनि घराँ विचि गुरि उठि घरीं तिनाड़े जाई॥

भाई गुरदास जी, वार 1/30

यह हुआ है कि कुछ डालर तो सिर झुकाने पर रखेगा ही। चलो, कोई बात नहीं, दस डालर तो देगा ही देगा, दस का ही यहाँ पर चार सौ बन जायेगा। यह हाल हमने बना लिया है, बाजों पर अलग पैसे रखवाने, सरोपे अलग लेने, घर में जाकर अलग दक्षिणा लेनी। क्या करने हैं पैसे? गुरूद्वारा यह बना हुआ है तो सफल है यदि इसमें नाम जपने वाले आएं। यदि लट्ठ मार आ गये हमारे बाद फिर बताओ इतना धन लगाया? मैं तो पैसा

लगाना नहीं चाहता था। मैं कहा करता था इसमें तो स्कूल खोल दो, बच्चे पढ़ेंगे, हस्पताल खोल दो, बीमारों का इलाज होगा। इस गुरूद्वारे में हउमैं वाले आदमियों का इलाज होना है पर आपस में हउमै यहाँ पर आकर बहुत चुभती है, बढ़ती है; उसकी पगड़ी वह उतारता है, उसकी पगड़ी पहले वाला उतारता है। कभी देखा है गुरूद्वारे में गोलियाँ चलती हैं। यह तो तभी सफल है यदि यहाँ पर बन्दगी करने वाले आएं, नाम जपने वाले,क्लासें लगाने, नाम जपने वालों की, गुरबाणी पढ़ाएं, सच्ची तरह से उन्हें सब के लिये सांझा बनाएं, फिर ठीक है।

सो महाराज जी कहते हैं, ''प्यारे! यदि सबसे मुश्किल यदि दुनियाँ में कोई काम है तो वह नाम जपना है। इन्सान सारे काम कर लेगा, धरती के नीचे चला जायेगा, सुरंगों में जाकर बैठ जायेगा, खानों में बैठकर कोयला निकाल रहे हैं। कहते हैं कितनी गहरी हैं? कहते हैं दो मील लम्बी है जी। एक खान के अन्दर नदी का पानी घुस गया, वह सारी ही भर गई। कितना जबरदस्त खतरा है। आसमानों में चले जायेंगे, समुद्र की तहों में पहुँच जायेंगे, युद्ध कर लेंगे पर क्या मज़ाल है कि कोई बैठकर वाहिगुरू जी का नाम जप ले, नहीं जप सकता क्योंकि मन को साधना पड़ता है –

ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ।
मन ही मन सिउ कहै कबीरा मन सा मिलिआ न कोइ॥

पृष्ठ – 342

पहली बात तो यह है कि यह नहीं जप सकता, जब तक गुरमुख की संगत नहीं करता, जिसे सन्त कहतें हैं–सन्त है नहीं, अब झगड़ा तो यही है कि अब क्या करें? कोई सन्त पदवी का मिले तो नाम जपाये। इसके बिना नाम नहीं जपा जा सकता। लगन लगती ही नहीं। यदि लगन लगती है तो बाबा जी! हमारा लड़का पास नहीं हुआ, हमारी लड़की का विवाह नहीं हुआ, वह तलाक देता है, हमारा कारोबार बन्द हो गया। एक प्रेमी आया कहता,''मेरी भैंस ने दूध देना बन्द कर दिया।''

मैने कहा,''मैं पशुओं का डाक्टर हूँ कि मै जाकर तेरी भैंस के थनों को खोल दूँ?''

कहता है,''आप अपनी शक्ति से खोल दो।''

मैंने ढंग बता दिया कि पाँच सिखों को भोजन खिलाकर प्रार्थना करवा लो। यह मेरा पक्का निश्चय है कि जहाँ पाँच सिंघ होंगे, वहाँ गुरू साहिब का वचन है कि पाँचों में मैं प्रस्तुत होता हूँ। अब महाराज जी इसी वचन में बन्धे हुए हैं। चाहे किसी ने सच लिख दिया, चाहे किसी ने कैसे भी लिख दिया। महाराज जी ने स्वयं भी लिखा है –

पंथ खालसा खेती मेरी। करउ संभाल मै तिस केरी।

मैंने कहा, ''तू पाँच सिंघों को भोजन पर बुला ले। तरीका मैं तुझे बता देता हूँ, हर चीज़ की युक्ति हुआ करती है। जब वे आयें, तो उनके चरण धोना। तू यह मत समझना कि अमुक सिंघ आ गया, अमुक सरदार सिंघ आ गया, सभी के बारे में यह सोचना कि गुरू दँसवें पातशाह आ रहे हैं। इससे कम यदि तेरा निश्चय हुआ तो भैंस के थन नहीं खुलेगें।''

मुझे उसका टैलीफोन आया कि, ''सिंघ तो आ गये पर चरण नहीं धुलवाते।'' मैनें कहा यह भी समस्या है। मैंने कहा तू ऐसे कह कि मैं आपके चरण नहीं धोता, पर आप मेरी प्रार्थना मान कर यह टब है, बहुल पड़ा है, इसमें पैर रख कर निकल आओ, आप अपने आप ही धो लो। पैर धोकर मेरे हाथ मत लगने दो। उन्होंने ऐसे ही किया। फिर मैंने कहा जो जल हाथ धोने के काम आयेगा, उसे भी बिखेरना मत, वह भी उसी में डाल देना। बाद में जब चूला पढ़ेगें, वह भी मत बिखेरना, वह भी उसी में मिला देना। मैंने कहा, ''कितनी भैसें हैं?'' वह बोला, ''सात आठ हैं अब भी यहीं बैठे होगें संगत में, वे सिंघ।

कहता है,– ''कल दूध की बाल्टियाँ भर दी, आज एक बूंद भी नहीं निकल रहा, थन ही बन्द हो गये हैं।''

मैंने कहा,''नज़र लग गई?''

कहता है, ''हाँ जी! बहुत से लोग इकट्ठे हो गये थे।''

मैंने कहा, ''सुन, तेरी नज़र तोड़ देगें सिंघ और जब वे चूला पढ़ें तो कहलवा देना कि ''महाराज! इनकी भैसें खूब दूध दें।''

वह कहलवा दिया फिर फोन आया कहता है,''जी! सभी भैसों ने वैसे ही ठीक ठाक दूध दे दिया।'' अब देखो, काम तो हमने चलाने ही हैं, ये भी चलते रहें, पर यह भी समझो कि काम क्यों चला?'' मैंने पूर्ण श्रद्धा रखी कि गुरू दँसवें पातशाह आ गये। श्रद्धापूर्वक मैंने यह माना। अब सोचो यदि उनका ध्यान हृदय में रख कर नाम जपा जाए तो कितनी महान पदवी प्राप्त हो, कोई दुख आए ही न। सो साध संगत जी, मन का ही सारा काम है।

ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ।
मन ही मन सिउ कहै कबीरा मन सा मिलिआ न कोइ॥

पृष्ठ – 342

मन को साध ले, यदि मन को साध लिया तो फिर बाल बच्चों में रह, फिर तो जी मुझे मोह–माया लग गई। महाराज जी कहते हैं, तुझे युक्ति बता देते हैं, मोह–माया नहीं लगेगी।

धीआ पूत सभ हरि के कीए॥

यह वाहिगुरू ने तुझे अमानत दी है – पालने के लिये। इनके प्यार में मत फसना। इन्हें training (शिक्षा) दे, अच्छे बच्चे बनाना। तू सेवा कर परिवार की, ब्रह्म रूप समझ कर, फिर तू नहीं फसता। काम तो करना है –

नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति॥

हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकति॥
पृष्ठ – ५२२

कहते हैं, युक्ति हुआ करती है - गुरू के पास। कारोबार करता हुआ भी पार हो जाता है, पर सन्त की संगत किये बिना नहीं हो सकता, प्रार्थना की जाती है, सन्त नहीं मिलता जब तक भाग्य न जागें। यह शबद पढ़ा था मेरे से पहले –

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी॥
पृष्ठ – 522

वह तो विरले ही होते हैं। अब मैं तुम्हें तरीका बताता हूँ कि मान लो सन्त नहीं मिलता, आप गुरू ग्रन्थ साहिब पर निश्चय बनाओ, इसे प्रत्यक्ष रूप में समझो कि यह गुरू नानक साहिब है। यदि हम गुरू नानक साहिब तक भी पहुँच जाएं तो भी बहुत बढ़िया है। यह मैं वचन कर रहा था।

अंतरि गुरु आराधणा जिहवा जपि गुर नाउ।
नेत्री सतिगुरु पेखणा स्रवणी सुनणा गुर नाउ॥
पृष्ठ – 517

फिर वह जाता कहाँ है?

सतिगुर सेती रतिआ दरगह पाईऐ ठाउ॥ पृष्ठ – 517

जिसका प्यार गुरू के साथ हो गया, उसे दरगाह में स्थान मिल जाता है। ऐसे नहीं मिलता। सारी आयु झूठी गवाहियां दीं और भाई ने कर दी प्रार्थना कि "महाराज! इसे अपनी दरगाह में स्थान दे दे।" हमने तो सिंघों को कहा है कि यह अरदास नहीं करनी। ऐसे कहना है, "सच्चे पातशाह! तू कृपा कर, इस बार तो यह भूल गया, यदि इसमें कोई कमी है तो इसे मनुष्य जामा दे दे। यह तो हम कर सकते हैं। हम कैसे ऊपर से निकल सकते हैं, उसका हुक्म सर्व शक्तिशाली है, जिनके अन्दर से 'मैं' मर गई वे ही मेरी दरगाह में आते हैं, हम कैसे हर किसी को दरगाह में घुसा दें।"

एक बार बाबा नन्द सिंघ जी महाराज कलेरां वालों के पास एक प्रेमी फूल लेकर गया–किसी के। वे सिंघ ऐसा किया करते थे कि जो उनके प्रेमी थे, यदि कोई प्राण त्याग देता था तो फूल डालने से पहले, बाबा जी के पास ले जाया करते थे। वे शक्तिशाली महापुरुष थे। वह फूल लेकर अरदास किया करते थे कि, "सच्चे पातशाह! तेरी सिखी में रहा है, आप इस पर कृपा करो।" एक प्रेमी अपने भाई के फूल लेकर गया जो शराबी–कबाबी चारों ऐब शरई था।

आकर कहता है,"बाबा जी! यह तुम्हारा सिख था. संगत में आया करता था।"

बाबा जी ने फूल पकड़े, जब अर्न्तध्यान हुए तो, दूर, फैक कर मारे। कहते हैं, "ओ दुष्ट! मुझे भी डांट लगवा दी दरगाह से? सच–सच बता कौन है?"

कहता है,"जी! मेरे भाई के थे।"

कहने लगे, "कौन से भाई के, जो शराबी था?"

कहता है,"हाँ जी! मैंने सोचा उसका भला हो जायेगा।"

नहीं, इस तरह नहीं होता कि दरगाह में कोई स्थान दिलवा देगा। दरगाह में स्थान उसे मिलता है जो इसके लायक होता है। तख्त पर उसे बिठाता है वाहिगुरू, जो तख्त के लायक होता है। सो इस तरह अपने जीवन को स्वयं सम्भालो। अब सावण की सक्रान्ति में महाराज जी ने हमें बहुत बड़ी शिक्षा दी है। वह यह है कि

सावणि सरसी कामणी चरण कमल सिउ पिआरु॥
पृष्ठ – 134

इसके अन्दर आनन्दित हो जाता है–बन्दगी करने वाला। इसके आन्तरिक अर्थ तो और हैं। बाहरी अर्थ मैं तुम्हें बताता हूँ। जिसका चरण–कमलों से प्यार हो गया वह आनन्दित होता है, खिलता है। दूसरा मुरझाया हुआ रहेगा–संसार में।

नानक भगता सदा विगासु।
सुणिऐ दूख पाप का नासु॥ पृष्ठ – 2

भक्तों के मन में सदा आनन्द ही आनन्द रहता है। प्रफुल्लित रहता है क्योंकि नाम जपा होता है और उसके अन्दर आनन्द होता है जिसका चरण कमलों से प्यार हो गया। जिसका प्यार ही नहीं हुआ, वृति ही नहीं लगती; वृति का भी सवाल है यह क्यों नहीं लगती? अन्दर की खोज करनी पड़ती है, ये बातें हैं लम्बी चौड़ी कि अन्दर तो हमारे कूड़ा कर्कट ही बहुत भरा पड़ा है। वाहिगुरू जी ने अच्छी–अच्छी चीजें स्वयं सम्भाल कर रखी हुई हैं। वहाँ तक पहुँचने के लिये वज्र कपाट लगा दिये–

अन्दरि कोट छजे हट नाले।
आपे लेवै वसतु समाले॥ पृष्ठ – 1033

वे वाहिगुरू ने सम्भाल कर रखी हुई है –

बजर कपाट जड़े जड़ जाणै गुर सबदी खुलाइदा॥
पृष्ठ – 1033

गुरू का शबद देकर खुलवाता है–उसे। सो चरण कमलों से जिसका प्यार हो जाता है वह खिल उठता है –

मनु तनु रता सच रंगि इको नामु अधारु॥
पृष्ठ – 134

अब सच के साथ जो प्यार करेगा, रंगा गया जो, उसे सहारा होता है नाम का। केवल नाम का। नाम के बिना मैंने बताया है मनुष्य –

आखा जीवा विसरै मरि जाउ॥ पृष्ठ – 9
सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ।
नानक अवरु न जीवै कोइ।

जे जीवै पति लथी जाइ।
सभु हरामु जेता किछु खाइ॥ पृष्ठ - 142

महाराज जी ने तो इतनी बात कह दी कि हराम खा रहे हैं, नाम के बिना जो खा रहे हैं। सो बहुत कठिन है नाम। साध संगत जी! चित की अवस्थाएं हुआ करती हैं। यह एक दर्शन शास्त्र की बात है। एक तो हुआ करती है मूढ़ अवस्था यह पैदा होती है- काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार, ईर्ष्या, निन्दा, आसा, अन्देसा, वासनाओं से। यह परमात्मा के रास्ते पर चलती नहीं, कोशिश करके देख लो तुम। सारे क्यों नहीं आते? मूढ़ अवस्था में से गुज़र रहे हैं। नीच अवस्था को मूढ़ अवस्था कहते हैं। उन लोगों की अवस्था महानीच होती है, उन्हें दुर्मति शक्तियाँ, गुरू के द्वार तक नहीं आने दिया करतीं कि तू योग्य नहीं है - you are **not ›t to enter satsang**ी कोई बात है, यहां सत्संग में वही आते हैं, जिनके भाग्य में लिखा होता है, दूसरा आ ही नहीं सकता -

बिनु भागा सतसंगु न लभै बिनु संगति मैलु भरीजै जीउ॥
पृष्ठ - 95

यह मूढ़ अवस्था, सौ आदमियों में से अस्सी की अभी भी मूढ़ अवस्था है। ये तमो गुणी व्यक्ति होते हैं, सतोगुण और रजोगुण दबा हुआ होता है। दूसरी इसके बाद वाली अवस्था को 'सुप्त' अवस्था कहते हैं। वह ऐसी अवस्था होती है कभी सतोगुण हो गया तो कभी तमोगुण ने आकर दबा लिया। कभी मन करता है धर्म की कमाई कर लें, कभी मन करता है छोड़ो ये सब क्या रखा है इसमें? कुछ नहीं है, ऐसे ही समय बर्बाद करेंगे। कभी मन करता है दान दे दे; कभी मन करता है ऐसे ही पैसे खराब करेगें। वह अस्थिर रहता है। यह चित की सुप्त अवस्था है।

तीसरी हुआ करती है विक्षप्ति। वह ऐसी अवस्था हुआ करती है कि उसमें सतोगुण प्रधान होता है, रजोगुण दबा हुआ होता है पर वह पूरी तरह से दबा हुआ नहीं होता, वह वासनाएं पैदा कर देता है कि हम यह काम करें, अमुक काम करें, उसे कर्मों के फुरने (विचार) खींच लेते हैं नीचे, रजो गुण स्वयं प्रधान हो जाता है, सतो गुण को नीचे दबा लेता है पर उसका स्वभाव नहीं बदलता, वह सत्संग में जरूर आयेगा, बाणी भी पढ़ेगा, नाम भी जपेगा, बैठेगा भी पर उसकी आन्तरिक अवस्था टिकी हुई न होने के कारण अस्थिर रहता है।

चौथी हुआ करती है एकाग्र अवस्था। वह यह है कि भजन करने लग गये, ठीक है, बैठे हैं तो इसी में ही सारा कुछ भूल गये। चित एकाग्र हो गया, वासना कोई न उठी, यहाँ पर सतोगुण प्रधान होकर उसका प्रकाश पड़ता है, चित पर।

इसके बाद हुआ करती है निरूद्ध अवस्था। इस में केवल नाम होता है यदि ध्यान लगाते हो गुरू नानक साहिब जी का तो केवल गुरू नानक साहिब जी का ही ध्यान रहेगा, स्वयं नहीं होगा।

ये पाँच, चित की अवस्थाएं होने के कारण हम मजबूर हैं, पता नहीं मूढ़ अवस्था में ही, सुप्त में हों, विक्षप्ति में हो। इसलिये परिश्रम करना पड़ता है। इसके बाद आती हैं वृतियां, कभी कोई वासना आ गई, कभी कोई वासना आ गईं। कभी सत्संग में बैठे ही वासना जाग पड़ी। वासनाएं नाम नहीं जपने देतीं। ये बड़ी-बड़ी वासनाएं है-धन वासना, पुत्र वासना लोक वासना, शास्त्र वासना, अनुष्ठान वासना, वासनाओं का कोई अन्त नहीं है, यह दरिया बहता है। इसमें आगे चलकर अवस्थाएं होती हैं। इनमें अच्छी भी होती हैं और बुरी भी होती हैं।

पहली प्रमाण वृति है-यह प्रमाण पाँच-छह प्रकार के होते हैं, इन्हें मैं बताना नहीं चाहता।

दूसरी होती है विपरजा-यह मिथ्याज्ञान होता है। वास्तविकता का ज्ञान नहीं होता, मिथ्या, झूठा ज्ञान होता है। अपने मन से बनाया हुआ। उसे विपरजे कहते हैं। वह ऐसा होता है कि है तो सभी जगह परमेश्वर, पर हमें दिखाई नहीं देता, हम तो स्वयं ही बने हुए हैं। यह वृति नहीं टूटती। जोर लगाकर देख लो, जो लगाना चाहता है।

तीसरी होती है विकल्प। इसमें ऐसा होता है कि, है तो यह चेतन, पर यह अपने आपको जड़ शरीर समझे जाता है यह भ्रम पड़ा रहता है इसके मन में। पड़ी तो रस्सी है अन्धेरे में, साँप का भ्रम बना होता है। असली को नकली समझना यह विकल्प वृति हुआ करती है।

चौथी हुआ करती है निद्रा। निद्रा वृति उसे कहते हैं कि भजन करने लग जाये। बता दिया कि तू उस तरह से रीढ़ की हड्डी सीधी रखना, शरीर बिल्कुल ढीला छोड़ देना इस तरह से बैठना, बार-बार घुटने मत हिलाते रहना। वह भजन करते-करते धीरे-धीरे नीचे को होने लग जाता है, ठोड़ी छाती से लग जाती है; यहाँ पर पहुँच कर फुरना नहीं आता कोई भी, सभी फुरने खत्म, ऐसे लगता है कि मेरे चित में एकाग्रता आ गई पर होती यह नींद हैं। इसे 'तन्द्रा नींद' कहते हैं। वह भजन नहीं करने देती। साधुओं को भी आती है, सभी को आती है। वह कहते हैं बड़ा 'आनन्द' आया। उसमें आनन्द भी बहुत है पर है नींद। इसे निद्रा वृति कहते हैं।

एक हुआ करती है स्मृति वृति। वह होती है जो ——— कल बीत गई, वह आज फिर से पुन: याद आना; भजन करते समय याद आती है कि मैं वहाँ गया था। वहाँ मुझे अमुक व्यक्ति मिला था। उसने मेरा आदर न किया, अमुक काम न किया। करता भजन है, घूमता स्मृति में है।

इन पाँचो चित की अवस्थाओं में से एकाग्रता और निरूद्ध तो ठीक है, बाकी नीचे गिराने वाली हैं, इसी लिये हम नाम नहीं जप सकते क्योंकि और बेअन्त चीज़ें हैं जो रूकावट डालती हैं। सन्त बताया करते हैं विधि, कि तू धीरे-धीरे चला चल और धीरे-धीरे तू इन्हें जीत लेगा।

अब महाराज जी कहते हैं, जिसका प्यार हो गया, नाम का आधार हो गया।

मनु तनु रता सच रंगि इको नामु अधारु॥ पृष्ठ-134

हमें सहारा (आधार) नहीं है, यदि आधार मिल जाये फिर तो मनुष्य हर वक्त ही नाम जपता है क्योंकि जपेगा नहीं तो मछली जैसा हाल हो जायेगा। सो महाराज जी कहते हैं -

बिखिआ रंग कूड़ाविआ.................॥ पृष्ठ - 134

जिस प्यार में तू पड़ा हुआ है, सांसारिक प्यारों में, ये सभी झूठे हैं -

................दिसनि सभे छारु॥ पृष्ठ - 134

ये राख हैं, तेरे साथ कोई चीज़ नहीं जायेगी, किला बना ले, जो मर्जी बनाना है बना ले, तेरे साथ तो कुछ भी नहीं जायेगा, तू क्यों विषयों के भंवर में पड़ा हुआ है? गुजारा कर, सावधान होकर कर, कमाई कर सावधान होकर, डूब मत इसके अन्दर। नाम की अमृत बूंद की तलाश कर, जिसे पा कर तू सदा सदा के लिये अमर हो जायेगा। वह अमृत बूंद महाराज जी कहते हैं तुझे नहीं मिलनी -

हरि अंम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारु॥

पृष्ठ - 134

सन्तों को मिलकर तुझे इस अमृत के बारे में, ज्ञान के बारे में, ज्ञान हो जायेगा, अमृत तेरे अन्दर है -

घर ही महि अंम्रितु भरपूरु है मनमुखा सादु न पाइआ॥

पृष्ठ - 644

जैसे मृग को नहीं पता कि मेरी नाभि में कस्तूरी है। इसी तरह हमें नहीं पता कि हमारे अन्दर अमृत है। महाराज जी कहते हैं तेरे अन्दर है -

नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु।
देही महि इस का बिस्रामु।
सुंन समाधि अनहत तह नाद।
कहनु न जाई अचरज बिसमाद॥ पृष्ठ - 293

यह तू सन्तों से मिल कर पी ले -

वण तिणु प्रभ संगि मउलिआ...............॥ पृष्ठ -134

जितना आनन्द दिखाई देता है यह चेतन ज्योति के फलस्वरूप ही दिखाई देता है अन्यथा यहाँ पर कुछ भी न हो। वह आनन्द, जब मनुष्य के अन्दर आता है तो वह भी आनन्दित हो जाता है -

..........संम्रथ पुरख अपारु॥
हरि मिलणै नो मनु लोचदा करमि मिलावणहारु॥

पृष्ठ - 134

हमारे जो शुभ कर्म हैं, वे जब निष्काम कर्म बन जायेंगे, फिर हम उपासना में आयेंगे, उपासना के बाद ज्ञान में आयेंगे ज्ञान की अन्तिम अवस्था, महापुरुषों की कृपा से गुरपरसादि से टूटती है तब भाई। प्यारे! तू मिल सकेगा परमेश्वर को।

जिनी सखीए प्रभु पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार॥

पृष्ठ - 13

हम बलिहार जाते हैं, जिन्होनें इस विषम संसार में रह कर प्रभु को पा लिया।

नानक हरि जी मइआ करि सबदि सवारणहारु॥

पृष्ठ - 134

हे वाहिगुरू तू कृपा कर, यह तत्व महाराज जी बताते हैं कि यह शबद जो है महाराज जी का, यह सँवार देता है सभी चीज़ों को। सँवारणहार है, यह जो मन्त्र वाहिगुरू तुम्हें मिला है। अब कहते हैं, यह महीना बढ़िया किसे लगता है? यह सुहावना हमें क्यों नहीं लगता क्योंकि हम चिन्ता तथा वासनाओं से घिरे हुए है। यह सुहावना लगता है -पढ़ो प्यार से -

धारना - जिहड़े वाहिगुरू-वाहिगुरू जपदे,
सावण लगदा पिआरा - 2, 2
जिहड़े वाहिगुरू-वाहिगुरू जपदे - 2, 2
जिहड़े वाहिगुरू-वाहिगुरू जपदे...........-2

सो इस प्रकार महाराज जी ने सिद्धान्त बताया है -

सावणु तिना सुहागणी जिन रामनामु उरि हारु॥

पृष्ठ - 134

जिसने राम नाम का गले में हार पहन लिया, हर वक्त परमेश्वर का नाम जिसके मुख से निकलता है, उसे प्यारा लगता है, यह सारा महीना। दूसरा यह कि मानस जन्म का उसी को आनन्द आता है जो बन्दगी करता है। उसे सावण समझ लो। सो इस प्रकार जो प्रार्थनाएं आप से की गई हैं - कुछ बहुत कठिन हैं। साखियाँ मैनें बहुत नहीं सुनाई ताकि मतलब की बात समझने का यत्न करें और समझ कर उस पर अमल करें साध संगत जी। उन्नति करो जैसे विद्यार्थी करता है कि मेरी परीक्षा हो गई, मैं अब तीसरी में हो गया, चौथी में, दसवीं में, बाहरवीं में, अब मैंने बी.ए. कर ली, एम.ए. कर ली, अब D.Lit कर रहा हूँ। महाराज जी कहते हैं, यह भी पाठशाला है जो सत्संग है। इसमें अध्यापक को बहुत कठिनाई होती है। अध्यापक एक है, विद्यार्थी कोई दूसरी कक्षा का है तो कोई दसवीं का कोई क्द्ध.स्र का, उसे सभी को पढ़ाना है।

महाराज जी कहा करते थे। एक दिन प्रौफेसर बैठे थे।

महाराज जी ने कहा,''आप कौन सी कक्षा को पढ़ाते हो?''

कहता है,''जी, एम. ए. की।''

महाराज जी कहते, ''बी. ए. की कक्षा नहीं पढ़ाते?''

कहता है, ''नहीं जी, हमारा स्तर Status ऊँचा है जी। हम एम.ए. को ही पढ़ाते हैं।'' Ph.d वाले को कहते हैं कि तू एम.ए. वाले को क्यों नहीं पढ़ाता? ''कहता है नहीं जी! मैं तो क्क्द्ध.स्त्र को ही पढ़ाता हूँ।'' महाराज जी हस पड़े।

सभी कहने लगे, ''महाराज! क्या बात है?''

कहते हैं, ''हमारे विद्यार्थी पहली से क्क्द्ध.स्त्र तक होते हैं सभी को पाठ पढ़ाना होता है।''

महाराज जी के वचन सुनो, चौथे पद के वचन आएंगे। साखी गनका की सुनाएंगे। गनका की साखी है पहली कक्षा वालों के लिये, ऊपर के वचन हैं ऊँची अवस्था वालों के लिये। सो जो हमने वचन सुने हैं उन्हें हृदय में धारण करने का यत्न करो। रिकार्ड किये हुए हैं, फिल्म ले लो, टेप ले जाओ। लिखित रूप में आ जायेगें। सम्भाल कर रखो। आत्म मार्ग क्यों चलाया है? मैंने चलाना नहीं था, मुझे पता था कि यह बहुत बड़ा काम है। अब हुम्म में आ गया कि जो रिकार्ड करते हैं लिखित रूप में यदि कोई कहता है कि मैं पढ़ना नहीं जानता तू मत पढ़, पर अपने बच्चों के लिए लेकर रख लो, तेरे बच्चों को जीवन दान मिल जायेगा, ज्ञान आ जायेगा, तेरे से नहीं पढ़ा जाता, तू मत पढ़। लेकर रख ले, बेअंत साहित्य बन जायेगा। ढूँढते फिरोगे किसी दिन, दुनियाँ में यह साहित्य 'आत्म मार्ग' मिल जाये क्योंकि इसके अन्दर सभी सत है, ऐसे वचन हैं जो कहीं मिलते नहीं हैं। सभी के सभी सीधी सादी बोली में बताए गये है, कोई भी कठिन शबद प्रयोग नहीं किया गया, जैसे मैं अब बोल रहा हूँ, इसी तरह बोला हुआ है। यदि तुझे अभी काम बहुत हैं और पढ़ा नहीं जाता तो लेकर रख ले, बुढ़ापे में जाकर पढ़ लेना। यह सदा ही अमर है क्योंकि गुरबाणी कभी पुरानी नहीं होती। यह गुरबाणी का अर्थ है यह कैसे पुराना हो जायेगा?

सो अब मीडिया आ गया, गुरू नानक पातशाह जी के समय यदि यह सारा system (प्रणाली) होता, तो सभी कुछ रिकार्ड हो जाना था। पर अब तो विज्ञान ने काफी उन्नति कर ली है, सभी कुछ आ गया। यह छोटा सा होता है कम्पयूटर यदि आपने गुरू ग्रन्थ साहिब का कोई शबद ढूंढना है, वहाँ वही Command दे दो, जितने गुरू ग्रन्थ साहिब में वे शबद हैं, वे सभी तुम्हारे सामने निकाल कर रख देगा। हमारे से तो वही अच्छा है हमें तो बाणी याद ही नहीं होती, उसको पता नहीं कैसे याद है? सो इसे हम लिखित रूप में 'आत्म मार्ग' में रिकार्ड करवा रहे हैं। सो आगे जो आने वाला समय है उसमें लाभ ही लाभ है पर कलयुग भी क गुणा तेज़ होकर आ रहा है। हम कहते हैं कि नाम के साथ जुड़ जा, वह कहता है मैंने नाम के साथ नहीं जुड़ने देना, जितना जोर लगाना है, लगा ले। सो दोनों का झगड़ा है, वाहिगुरू जानता है कि वह अब किसे भेजे जो इसे बैठ कर मन्त्रे और सारा शुद्ध कर दे। सो इतने वचन मेरे प्रवान करना। शरीर का स्वस्थ बिगड़ा हुआ है, कब दरगाही निमन्त्रण आ जाये, यह शरीर शान्त हो जायेगा, पर यह शबद चिरकाल तक जीवित रहेगा। प्रवान करो।

वाहिगुरू जी का खालसा॥
वाहिगुरू जी की फतह॥